www.emanjari.com

मंजरी

स्त्री के मन की

अंक - 21 वर्ष - 2022

कर्मयोगिनी

आम औरतों की खास कहानी

Sulabh Sanitation Movement

Sulabh International
Social Service Organisation

समर्पित

औरत

पहाड़ सी मुसीबतों के बीच
आगे बढ़ पाने का नाम औरत है
दहाड़ती नसीहतों के बीच
अपनी कह पाने का नाम औरत है
हार के अंदेशों के बीच
परचम लहराने का नाम औरत है
ज़हरीले संदेशों के बीच
मीठा कह पाने का नाम औरत है
सैकड़ों हैवानों के बीच
इंसां रह पाने का नाम औरत है
दम तोड़ती जानों के बीच
नई जानें बना पाने का नाम औरत है।

–जागोरी द्वारा प्रकाशित ''आओ मिलजुल गाएँ'' से

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी को. शिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामा. जिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेहद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

हमारी बात

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र
पटना विवि

परामर्श

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
कंसल्टेंट डीएमआई, एवं
स्वतंत्र लेखिका

सुजाता गुप्ता
लेखिका, कवयित्री एवं
अनुवादक

संपादकीय

"पर लगा लिए हैं हमने अब पिंजरों में कौन बैठेगा
अब पिंजरों में कौन बैठेगा ज़रा सुन लो..."
—कमला भसीन

आधुनिक भारत के निर्माण में आज़ादी से पहले और आज़ादी के बाद के तमाम जनांदोलनों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है और इन आंदोलनों में आम महिलाओं की भागीदारी और ज्यादा महत्वपूर्ण है। साथ ही आज़ादी की लड़ाई जितना पुरुषों ने लड़ी उतनी ही महिलाओं ने भी। 1857 में ये सिलसिला अगर रानी लक्ष्मीबाई, बेग़म हज़रत महल, झलकारी बाई, ऊदा देवी, अज़ीज़न बाई, अवंतिबाई लोधी और धार की रानी द्रौपदी से शुरू होता है तो ऐसे अनेकों गुमनाम नामों से भी जिन्हें इतिहास में दर्ज़ नहीं किया गया। दर्जनों आम औरतों ने आज़ादी की जंग में अपनी कुर्बानी दी, अंग्रेजों के द्वारा उन्हें फांसी पर चढ़ाया गया और जिन्दा जलाया गया। एक गुमनाम इतिहास उस दौर की तवायफों का भी है जिन्होंने अपनी दौलत और अपनी जान सब इस देश और यहाँ के लोगों के लिए कुर्बान कर दिया। रुडयार्ड किपलिंग ने अपनी पुस्तक "ऑन द सिटी वॉल" में 1857 के विद्रोह में वेश्यालयों की सक्रिय भागीदारी और तवायफों के निजी योगदान पर विस्तार से लिखा है। इसके अलावा "1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता" किताब में शोभना देवी, इंद्र कौर, आशा देवी, भगवती देवी त्यागी, रहीमी, जमीला ख़ान, मन कौर, बख्तावरी देवी और उम्दा जैसी आम ग्रामीण विद्रोहिणियों के नाम हैं जिन्होंने केवल अपने पतियों और बेटों को ही विद्रोह की जंग में जाने के लिए प्रेरित नहीं किया बल्कि खुद भी आगे बढ़कर सक्रिय योगदान दिया। (स्रोतः स्त्रीकाल)

भारत को आजाद हुए 75 वर्ष हो गए हैं। आज़ादी के 7 से ज्यादा दशकों के सफर में देश की महिलाओं का जीवन काफी बदला है। उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। उन्हें कई अधिकार मिले हैं, उन्होंने कई बंधनों से मुक्ति पाई है, कई तरह के अधिकारों की लड़ाई लड़ी है, कई जगह सफलता के परचम लहराए हैं और कई क्षेत्रों में पुरुषों से बाजी मारी है। महिलाएं अब महज हाउसवाइफ की भूमिका में नहीं हैं बल्कि वे अब होममेकर बन चुकी हैं। घर परिवार चलाने में आर्थिक सहयोग दे रही हैं। इससे उनके अंदर आत्मविश्वास पैदा हुआ है। ऐसी महिलाएं किसी पर निर्भर रहने के बजाय घर–परिवार, माता–पिता और पति को आर्थिक रूप से सहयोग करने लगी हैं। जो महिलाएं ज्यादा पढ़ी–लिखी नहीं वे भी अपनी बेटियों को अच्छी शिक्षा देकर कुछ बनाना चाहती हैं और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करना चाहती हैं। यह एक सकारात्मक रुझान है।

सिक्के का दूसरा पहलू भी विचारणीय है, जहां आज भी महिलाओं को घर के बाहर न निकलने की हिदायत दी जाती है। रेप या बलात्कार होने पर हमारा समाज एक औरत को आत्महत्या के लिए मजबूर कर देता है। यही नहीं कन्या भ्रूण हत्या जैसी घटनाएं महिलाओं के विकास में अवरोध पैदा कर रही हैं। आज भी महिलाओं को उतना आगे नहीं आने दिया जा रहा है जितनी कि जरूरत है और इसकी सबसे

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

आवरण चित्र

वरिष्ठ अतिथि कलाकार
अनु प्रिया

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612.2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

बड़ी वजह है हमारे समाज का पुरुषप्रधान होना। कई जगह ये सुना जाता है कि ''ये तो मर्दों वाले काम हैं।'' इन मर्दों वाले काम से हमेशा महिलाओं को ये जताने की कोशिश की गयी कि वे चाहे जितनी भी आगे बढ़ जाएं, लेकिन कुछ कामों में पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकतीं। एक तरह से ये बेहद मुश्किल था क्योंकि महिलाओं के लिए तो घर की चौखट लांघने की इजाज़त लेना ही किसी युद्ध लड़ने जैसा था तो, भला उन्हें ट्रेन–बसों की ड्राइवर बनने, माइनिंग इंजीनियरिंग, सिक्योरिटी गार्ड, टैक्सी ड्राइवर आदि बनने की इजाज़त कैसे मिलती। लेकिन, जिन आम महिलाओं की चर्चा हम मंजरी में करने जा रहे हैं उन्होंने समाज के इस भ्रम को तोड़ दिया कि कुछ कामों पर सिर्फ़ पुरुषों का ही अधिकार है। ये आम महिलाएं आज उन क्षेत्रों में भी कामयाबी के झंडे गाड़ चुकी हैं जहां केवल पुरुषों का प्रवेश ही वर्जित था।

हम सामने ला रहे हैं उन औरतों की कहानी जो पति की मौत के बाद खुद किसान, सिक्योरिटी गार्ड, ऑटो ड्राइवर या मैकेनिक बन गईं। वो औरत जो सोशल मीडिया पर अपनी उपस्थिति दर्ज कर रही है। वो औरत जो आशा या आंगनवाड़ी सेविका बन गयी। 'आम औरतों की ख़ास कहानी' ने कोशिश की है वैसी औरतों के बारे में बताना जिनका काम ज़मीनी स्तर पर हमारे देश व समाज में कुछ बदलाव ला रहा है। छोटे से शुरू होकर बड़े स्तर तक पहुंचता ये बदलाव, निजी हो या सामूहिक, हौसला बढ़ाता है। देशभर में बिखरी ऊर्जा को साथ ला रहा है। बदलते भारत की नब्ज़ पकड़ती विशेष अंक की 'मंजरी' इन सच्ची कहानियों के साथ प्रस्तुत कर रही है दमदार आम औरतों की दास्तान। हमने इस सूची में उन औरतों को शामिल किया है जिन्होंने नियम बदले, नए रास्ते बनाए और मिसाल क़ायम की, और कुछ नहीं तो कम से कम समाज को तो झकझोरा ही। ये केवल इन औरतों के काम और उपलब्धियों की सूची भर नहीं है। ये हमारे समाज का एक आईना भी है। इसमें छिपी हैं कहानियां उन औरतों की जिन्होंने उस काम को शुरू करने की हिम्मत दिखाई जिसे हमेशा से मर्दों का हक़ माना गया, उनकी फ़ितरत मानी गई। इनमें वो भी शामिल हैं जिन्होंने अपने लिए तय कर दी गई सीमाओं को चुनौती दी। कुछ ऐसा कर दिखाया जो मिसाल बन गया।

पहाड़ सी मुसीबतों के बीच
आगे बढ़ पाने का नाम औरत है
दहाड़ती नसीहतों के बीच
अपनी कह पाने का नाम औरत है
–कमला भसीन

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

थीम पेपर

सोच पर चोट जरूरी

नाम कविता देवी है, लेकिन बुंदेलखंड की पहचान इतनी मजबूत है कि इन्होंने अपने नाम के साथ 'बुंदेलखंडी' लगा लिया है। भारत के पहले एकमात्र ऐसे अखबार की संपादक हैं जिसे सिर्फ महिलाएं ही निकालती हैं, वह भी सुदूर गांव की कम पढ़ी–लिखी निहायत ही घरेलू स्त्रियां। 20 साल के अपने इस सफर के बारे में बता रही हैं इस अनोखे 'खबर लहरिया' की संपादक कविता बुंदेलखंडी–

कविता बुंदेलखंडी

(संपादक, खबर लहरिया)

हमने 2002 में चित्रकूट में 'खबर लहरिया' को शुरू किया था। मकसद था चंबल के उन इलाकों की खबरों को निकालना जहां तक मुख्यधारा की मीडिया नहीं पहुंच पाती थी। खासकर महिलाओं से जुड़ी खबरें, जो उन गांवों में घरों की चारदीवारों में कैद होकर रह जाती थीं। हमारे सामने दो मुद्दे थे– पत्रकार और भाषा। इसके लिए हमने उन्हीं गांवों की महिलाओं को पत्रकारिता सिखाने की ठानी। पत्रकारिता इसलिए क्योंकि ये एक ऐसा क्षेत्र है जिसे मर्दों का क्षेत्र माना जाता है। लोग सोचते हैं कि महिलाएं रिपोर्टिंग नहीं कर सकती हैं। तो हमने इस सोच पर चोट करना जरूरी समझा। हमने आठवीं पास और यहां तक कि निरक्षर औरतों को भी अपना हिस्सा बनाया। रही बात भाषा की, तो हमने स्थानीय बोली में ही खबरों को लिखने का फैसला किया। इस तरह हमारी टीम बनी। उद्देश्य सामने था, बोली साफ थी और हौसला बुलंद था।

शुरू–शुरू में हमने दो पन्नों का मासिक अखबार निकाला। इसकी खबरों को महिलाएं अपने गांवों से लाती थीं, खुद अपने अक्षरों में लिखती थीं और फिर कई–कई किलोमीटर पैदल चलकर सुदूर गांवों तक उन्हें पहुंचाती थीं। न हमारे पास साइकिल थी और न ही अखबार पहुंचाने का कोई और माध्यम। धीरे–धीरे लोगों को यह पसंद आने लगा। इसलिए भी क्योंकि खबरें उनकी अपनी भाषा में थीं। लोग झुंड बनाकर अखबार को पढ़ते थे। महिलाएं पढ़ती थीं, क्योंकि इसमें उनके बारे में लिखा होता था। हमारा मकसद भी यही था। हमने ऐसे–ऐसे गांवों की रिपोर्टिंग की, जहां करीब–करीब 2015 तक भी मुख्यधारा की मीडिया नहीं पहुंचती थी। लेकिन वहां के लोगों को पढ़ने का, सूचना पाने का अधिकार था। तो हम उन गांवों तक पहुंचे जो जंगली थे, पहाड़ों से घिरे थे और जहां हमेशा डाकुओं का डर होता था। हमने आदिवासियों की, दलितों की, मुसलमानों की, गांवों के आम लोगों की, उनकी समस्याओं के बारे में बात करनी शुरू की क्योंकि हमारा मानना है कि यदि सुदूर गांवों की बातों को बाहर नहीं लाया जाएगा तो उनकी आवाज कुंद हो जाएगी। आज हमें गर्व है कि हम उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कई जिलों तक पहुंच चुके हैं और हमारी टीम में 40 से अधिक महिलाएं हैं।

2015 से हम प्रिंट मीडिया से आगे बढ़कर डिजिटल मीडिया में प्रवेश कर चुके हैं। ऐसे में महिला पत्रकारों को हम पूरे प्रशिक्षण के बाद ही फील्ड में भेजते हैं। हमारी टीम पत्रकारिता के सिद्धान्तों और आदर्शों का बखूबी पालन करती है। हालांकि हमारे लिए सब कुछ इतना आसान नहीं था। पहले–पहल जब हमारी महिलाएं रिपोर्टिंग के लिए जाती थीं, तो कोई भी उन्हें पत्रकार मानने के लिए तैयार ही नहीं होता था। लोग कहते, एक लड़की किसी फैसले पर, पंचायत पर सवाल कैसे उठा सकती है? जब हम ग्राउंड पर काम करने जाते या किसी अधिकारी से बात करनी होती, हमारे साथ बुरा व्यवहार होता था, अधिकारी हमें

थीम पेपर

5 बजे के बाद या कभी–कभी तो 8 बजे के बाद घर बुलाते थे। वहां काम करने वाली अधिकतर महिलाएं गांव की ही थीं, कुछ शादीशुदा थीं, ऐसे में उनका अपना परिवार भी था और गांव में तो औरतों को लेकर कितनी ही बातें होती हैं, ऐसे में अपने आप को स्थापित करना हमारे लिए बहुत मुश्किल था। कई बार ये होता था कि अगर कोई दलित अथवा आदिवासी लड़की रिपोर्टिंग करने जाती और लोगों से सवाल पूछती तो लोग झल्ला कर चिल्लाते हुए कहते, 'हम नहीं मानते कि तुम पत्रकार हो, यहां से भाग जाओ।' कई बार तो खबर छापने के बाद आवाज़ को दबाने और बंद करने की कोशिश की गई, धमकियां मिली, गालियां मिली, बीच रास्ते में घेरा गया। प्रिंट के ज़माने में हम पैदल जाते थे, लोगों को लगता था, वे हमें कहीं भी रोक सकते हैं, लेकिन हमने उन चुनौतियों के आगे हार नहीं मानी, हमने तय कर लिया था कि हम कंधे से कंधा लड़ाएंगे और इस काम को कर के दिखाएंगे। उस समय जो स्थापित मीडिया थी, उसने भी बहुत सी खबरें नहीं छापीं, ज़रूरी मुद्दे नहीं उठाए लेकिन 'खबर लहरिया' ने सच्ची रिपोर्टिंग करते हुए अपना नाम बनाया।

चुनौतियां तब भी थीं, चुनौतियां आज भी हैं। वो कभी खत्म नहीं होतीं। मगर हमारा सफर चलता रहता है। आज इतने सालों के बाद हम बहुत आगे बढ़ चुके हैं। दो पन्ने से आठ पन्ने के हुए, ब्लैक एंड व्हाइट अखबार से रंगीन हुए, हाथ से लिखे हुए से बढ़कर प्रिंट में आए, एक भाषा से कई भाषाओं में छपने लगे और अब डिजिटल हो गए, तो इसका कारण सिर्फ यही है कि हम डरे नहीं। दवाबों और परेशानियों के आगे झुके नहीं। जब हमने उन गांवों की रिपोर्टिंग की, जहां आजादी के बाद से कोई मीडिया नहीं पहुंचा, प्रशासन नहीं पहुंचा, तो वहां के लोग झुंड बनाकर हमारे पास आने लगे। अपनी समस्याएं रखने लगे। वही हमारे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि थी। हमें कई सम्मान मिले, राष्ट्रीय भी और अंतरराष्ट्रीय भी, लेकिन हमें अपनी वास्तविक पहचान इन गांव वालों से मिली। मुझे सच्ची खुशी उन लड़कियों को, महिलाओं को देखकर मिलती है जो आज बेधड़क रिपोर्टिंग करती हैं। खबरों को समझती, सूंघती हैं, और उन्हें पूरे हौसले से निकालकर लाती हैं। मुझे याद है जब 2002 में हमने पत्रकारिता के लिए महिलाओं को ढूंढना शुरू किया तो वो एक दुरूह कार्य था। कोई पांचवी पास तो कोई आठवीं पास महिला मिलती थीं। कोई–कोई तो बिल्कुल निरक्षर थीं तो कोई नवसाक्षर थीं। हमने सबको प्रशिक्षण दिया। चारदीवारी में कैद उन महिलाओं को राजनीति की कोई समझ नहीं थी। वोट किसे कहते हैं और चुनाव क्या होता है, ये भी उन्हें ठीक–ठीक पता नहीं होता था। हमने उन्हें सिखाया, प्रशिक्षण दिया और फील्ड में उतारा। आज वो ही महिलाएं हर मुद्दे पर रिपोर्टिंग करती हैं। लिखती हैं और लाइव देती हैं। हमने चुनावों में उन्हें मैदान में भेजा और वो पूरे आत्मविश्वास के साथ उसे निभाती हैं। उन महिलाओं के हौसले और उनके आत्मविश्वास को देखकर हमारा सीना चौड़ा हो जाता है।

साभारः hindi.newsclick.in

पेज–6

पेज–14

पेज–24

अनु प्रिया (कलाकार/लेखिका)

सुपौल बिहार में जन्मीं अनु प्रिया जी के साठ से अधिक किताबों के आवरण एवं पत्र–पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादमी, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, अल्टरनोट प्रकाशन, अगोर प्रकाशन, प्रकाशन विभाग आदि से किताबों के आवरण पर निरंतर इनके द्वारा बनाये गए चित्र का प्रकाशन होता रहता है।

अनुक्रमणिका

समर्पित: औरत.....

संकल्पना .....

हमारी बात : संपादकीय .....

थीम पेपर: सोच पर चोट जरूरी .....

निराश हैं आशाएं 1

चुनौतियों ने रोका, फिर भी रुकी नहीं आशा..... 4

आशा जैसी योद्धाओं को मिली सुविधाएं, मगर ये भी कम 8

हमारी अच्छी सेहत के लिए बीमार 'वो'..... 10

एक नया इतिहास रच रहीं स्वच्छताकर्मी..... 12

स्वच्छांगिनी : पटना नगर निगम की चैम्पियन 13

सफाईकर्मियों को हो अधिकारों की जानकारी..... 16

बूंद–बूंद से सागर भर रहीं 'जीविका दीदीयां' 17

कोरोना में संकटमोचक की भूमिका निभाई..... 19

पिंजरे में बंद नाचतीं लड़कियां..... 21

जहां नहीं पहुंच पाती मुख्यधारा की मीडिया, वहां खड़ी है 'खबर लहरिया'..... 24

लीक से हटकर काम कर रहीं ये वीरांगनाएं..... 27

भीषण गर्मी और पितृसत्ता, दोनों पर वार..... 33

उपेक्षित

कोरोनाकाल में बनीं संकटमोचक, फिर भी...

निराश हैं आशाएं

"हमसे जितना काम लिया जाता है, उसका अगर 10,000 रुपए भी न बने तो बेकार है, यहां तो समय से 3000 रुपए देने में भी मुश्किल आती है। ये अकेली हमारी समस्या नहीं है हम अपनी सब बहनों की तरफ से बोल रहे हैं।''

आशा ग्रामीण भारत में रक्षा की अग्रिम पंक्ति की कार्यकर्ता है। कोरोना महामारी के दौरान ग्रामीणों का सर्वेक्षण करने और उनके स्वास्थ्य की निगरानी करने का काम करने वाली, देश की आशा कार्यकर्ता प्रति माह 2,200 रुपए की मामूली राशि के बदले में हर दिन अपनी जान जोखिम में डालती हैं। औसतन, एक आशा कार्यकर्ता की मासिक आय 2,000 रुपए प्रतिमाह से लेकर 5,000 रुपए प्रतिमाह तक होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस राज्य में कार्य कर रही हैं। उनकी अधिकांश आय प्रोत्साहन राशि के रूप में होती है। उन्हें पूर्ण टीकाकरण के लिए 75 रुपए, बच्चे की मृत्यु की सूचना देने के लिए 40 रुपए और गर्भवती महिला के साथ अस्पताल जाने के लिए 600 रुपए मिलते हैं। देशभर में फरवरी 2021 तक कुल 9,60,690 आशा कार्यकर्ता काम कर रही हैं। वे राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत सरकार के 60 से अधिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों और योजनाओं के लिए कार्य करती हैं। भारत सरकार की इतनी बड़ी परियोजना का भार ढो रही आशा कार्यकर्ताओं के स्वास्थ्य और सुविधाओं के प्रति बेरुखी उन्हें निराश करती जा रही है।

आशा कार्यकर्ताओं की मानसिक सेहत का सीधा असर देश की सेहत पर!

"....क्या इस सबका असर हमारी दिमागी हालत पर नहीं पड़ेगा? हमसे हमारे घरवाले भी खुश नहीं रहते। हमारे बच्चे तक पूछते हैं कि तुमको मिलता क्या है जो तुम इतनी मेहनत करती हो? सर्दी हो या गर्मी, हमें एक दिन में 5–6 किलोमीटर तक पैदल चलना पड़ता है। कई बार हम सुबह 8 बजे घर से निकलते हैं और ये पता नहीं होता कि घर कब लौटेंगे।''– आशा कार्यकर्ता, बीना भट्ट।

कोविड के संकट भरे दौर में आशा कार्यकर्ताओं ने देश के गांव–गांव और घर–घर तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुंचाईं। गर्भवती महिला और नवजात शिशु की देखभाल से लेकर कुपोषण, बुजुर्गों की देखभाल जैसी कई सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को पूरा करने की ज़िम्मेदारी आशाओं के कंधे पर ही टिकी है। मानसिक सेहत से जुड़ी सेवाओं का ज़िम्मा भी

आशाएं ही संभालेंगी। स्वास्थ्य महकमे की इस पैदल योद्धा पर कार्य का भार जितना अधिक है, उसके बदले मिलने वाले मेहनताने से वे संतुष्ट नहीं हैं। इस सबका असर आशा कार्यकर्ताओं की मान. सिक सेहत पर पड़ रहा है।

मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता यानी आशा की डगर बेहद मुश्किल है। *"सरकारी अस्पताल में डॉक्टर हमें 'ए आशा' कहकर बुलाते हैं। जैसे हमारी कोई इज्जत ही नहीं। सरक. ारी अस्पताल के सफाई कर्मचारी को जो सुविधाएं मिलती है, हमें नहीं मिलती। हम सरकार का इतना काम करते हैं, क्या हमें सरक. ारी अस्पताल में निशुल्क इलाज जैसी सुविधा नहीं मिलनी चाहिए?" – आशा कार्यकर्ता, बीना भट्ट।*

आशा कार्यकर्ता अनीता पंत कहती हैं *"कोविड के शुरुआती दौर में हमें कोई ट्रेनिंग नहीं दी गई। सेनिटाइज़र, दस्ताने पहनने के बारे में कुछ भी नहीं बताया गया। कोरोना की पहली लहर में ड्यूटी के दौरान मैं संक्रमित हुई। उसके बावजूद हमें कोविड किट बांटने के लिए कहा जा रहा था। मेरे पति इस काम में मेरी मदद कर रहे थे। मेरी हालत जब बहुत ज्यादा खराब होने लगी तो हमारी इंचार्ज ने दूसरी आशा से मदद लेने को कहा। वो भी संक्रमित थी लेकिन उसके लक्षण हलके–फुलके थे। उसने मेरे हिस्से का भी काम किया।''*

आशा कार्यकर्ता कौशल्या बिष्ट को मलाल है कि स्वास्थ्य क्षेत्र में होने के बावजूद वे अपनी कोरोना संक्रमित 15 साल की बेटी को अस्पताल में एक बेड नहीं दिला पाईं। वह कहती हैं कि बेटी के इलाज के लिए हम पर कर्ज का बोझ चढ़ गया। क्या हमारे बच्चों के इलाज का जिम्मा सरकार नहीं ले सकती थी?

उत्तराखंड आशा स्वास्थ्य संगठन की महामंत्री ललितेश विश्वकर्मा के मुताबिक, कोरोना के दौर ने हम सबको मानसिक तौर पर विचलित कर दिया था। हमारी मुश्किल विभाग के नियमों के चलते अधिक बढ़ गई। लॉकडाउन में हमें कई–कई किलोमीटर पैदल चलना पड़ता था। जितनी बार कोविड पॉजिटिव व्यक्ति की सूचना मिलती हमें अस्पताल जाकर उसके लिए दवाइयों की किट लानी थी। हम कह रहे थे कि एक साथ कुछ किट दे दो तो वो भी नहीं दी गई। उल्टा हमसे कहा जाता था कि जिस घर में किट देने जा रही हो वहां मरीज के साथ सेल्फी खींचकर भेजो। वे हम पर इतना भी भरोसा नहीं करते। ललितेश और उनका पूरा परिवार कोरोना संक्रमण की चपेट में आया।

एक अन्य आशा कार्यकर्ता लक्ष्मी बिष्ट कहती हैं, *''हम 9 महीने तक गर्भवती महिला की देखरेख करते हैं। उसकी जांच कराने कई बार सरकारी अस्पताल जाते हैं। वहां बच्चे के जन्म पर हमें 400 रुपये इंसेंटिव मिलता है। इससे ज्यादा तो हमारा आने–जाने में खर्च हो जाता है। कई बार तो लोग खुद ही जन्म के समय प्राइवेट अस्पताल में चले जाते हैं। तो वो पैसा भी गया।''* इसी तरह पल्स पोलियो अभियान के एक दिन में तकरीबन 150 घरों में जाना होता है और वर्ष 2006 से इसके लिए मात्र 100 रुपये मिलते हैं।

आशा कार्यकर्ता के कॉन्ट्रैक्ट में लिखा जाता है कि उसे जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अलावा सामान्य तौर पर हफ्ते में 4 दिन सिर्फ 2–3 घंटे के लिए काम करना होगा। जबकि आम तौर पर आशा कार्यकर्ताओं का कहना है कि उनके काम के घंटे तय नहीं हैं। रोज औसतन 4–5 घंटे और कई बार तो 12–12 घंटे तक काम करना होता है। छुट्टी का कोई दिन नहीं है। कभी भी इमरजेंसी कॉल आ जाती है। प्रसव पीड़ा जैसे मामले अचानक होते हैं। वे कहती हैं कि हम तो दिन–रात अपने काम से जुड़े रहते हैं। कोविड के समय में 13–14 घंटे भी काम किया है।

आशा माधुरी देवी कोरोना की दूसरी लहर को याद करती हैं तो आज भी डर सी जाती हैं, "फील्ड से हम घर वापिस आते थे तो बच्चों को अपने से दूर रखते थे, पूरे परिवार को भय था के हम से हमारे परिवार में किसी को ये बीमारी न हो जाए। पूरे गांव में जैसे डर का माहौल था। गांव के लोग हमें देखते थे तो हमारे मुंह पर दरवाजा बंद कर देते थे, गालियों से बात करते थे, कहते थे तुम कोरोना फैलाने आई हो।''

एक आशा पर गांव के 1000 हजार लोगों की जिम्मेदारी होती है। कुछ आशा ऐसी हैं जिनका घर उनके ही पैसों से चल रहा है, छोटे बच्चों को घर पर छोड़कर बारिश, सर्दी–गर्मी में वो दौड़ती हैं। उषा देवी कहती हैं, *''अस्पताल में आशा कभी इस कोने में बैठी है, कभी उस कोने मे बैठी है, वहां डॉक्टर का अपना कमरा है, नर्स का अपना कमरा है, यहां तक सफाईकर्मी की भी अपनी अलग बैठने की व्यवस्था है, परंतु आशा के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। ये हमारा शोषण नहीं तो और क्या है। करोड़ रुपए हैं हर जगह खर्च करने के लिए पर आशा के लिए स्वास्थ्य केंद्र में एक कमरा बनवाने के पैसे किसी सरकार के पास नहीं होते, हमारे बारे मे कोई नहीं सोचता।''*

उपेक्षित

राज्यसभा की एक कमेटी ने भी वर्ष 2020 की अपनी रिपोर्ट में माना है कि कोविड के दौरान आशा, एएनएम और आंगनबाड़ी कार्यकर्ता अपने जीवन के खतरे के बीच में कार्य कर रही हैं। उचित प्रशिक्षण, प्रोत्साहन और सुविधाओं के बिना उनसे बड़े कार्यों को पूरा करने की अपेक्षा की जाती है।

आशाओं के ज़रिये ही आज देशभर में घर–घर स्वास्थ्य सेवाएं पहुंच रही हैं और विश्व स्वास्थ्य संगठन के "हेल्थ फॉर ऑल" के लक्ष्य तक पहुंचाना संभव हो पा रहा है। मनोचिकित्सक डॉ प्रियरंजन अविनाश कहते हैं "कोरोना और उससे पहले भी टीबी जैसी संक्रामक बीमारियों के लिए कार्य कर रहीं आशाओं की शारीरिक–मानसिक सेहत दांव पर होती है। कम मेहनताना और कमज़ोर आर्थिक पृष्ठभूमि के चलते उन्हें वो मान–सम्मान भी नहीं मिलता, जिसकी वे हक़दार हैं। ऐसे में व्यक्ति में नकारात्मक ख्याल आते हैं और वो असंतुष्टि का शिकार हो जाता है। जिसे हम बर्नआउट (कार्य के प्रति असंतुष्टि) कहते हैं। कई बार ये डिप्रेशन में बदल जाता है।'' मनोचिकित्सक मानते हैं कि आशा कार्यकर्ताओं की मानसिक सेहत अच्छी होगी तो इसका असर सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर भी पड़ेगा।

मानसिक सेहत की देखरेख के ज़रिये आशा कार्यकर्ताओं की कार्यक्षमता बढ़ाई जा सकती है। जिससे हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली भी बेहतर होगी। मानसिक सेहत पर शोध कार्य कर रही एक संस्था मध्य प्रदेश में आशा कार्यकर्ताओं के साथ 'प्रोजेक्ट आनंद' काम कर रही है। इसका उद्देश्य रोजमर्रा के काम के चलते होने वाली मानसिक चुनौतियों का सामना करने के लिए आशा कार्यकर्ताओं को तैयार करना है। इस प्रोजेक्ट से जुड़े डॉक्टर अमेय बोन्द्रे कहते हैं कि अक्टूबर 2021 से शुरु हुआ ये प्रोजेक्ट सितंबर 2024 में पूरा होगा। आशा कार्यकर्ताओं के एक समूह की मानसिक सेहत की स्थिति, उनकी मुश्किलों और मज़बूतियों का पता लगाना, ये सिखाना कि वे अपने तनाव से कैसे निपट सकती हैं, इस सब पर बात की जाएगी।

डॉ. अमेय कहते हैं वर्कप्लेस वेलनेस (दफ्तर–कार्यालय में कर्मचारियों की शारीरिक–मानसिक सेहत) का विचार हमारे देश में अब भी नया है। ग्रामीण वर्कप्लेस तक ये विचार पहुंचा ही नहीं है। आशा कार्यकर्ताओं की मानसिक सेहत को बेहतर बनाने के लिए किया जा रहा ये शोध सफल होता है तो हम इसका इस्तेमाल आंगनबाड़ी, नर्स या अन्य कामगारों पर भी कर सकते हैं।

देश के कई राज्यों में डॉक्टर और ख़ासतौर पर मनोचिकित्सकों की भारी कमी है। ऐसे में सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों और सतत विकास के लक्ष्यों को हासिल करने में आशा कार्यकर्ताओं की भूमिका बेहद अहम है। अगर देश की सेहत की परवाह करनी है तो आशा कार्यकर्ताओं की शिकायतों और सेहत को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते।

साभारः hindi.newsclick.in/ruralindiaonline.org

सलाम

चुनौतियों ने रोका, फिर भी रुकीं नहीं आशा

बाधाएं और चुनौतियां हर कदम पर इनकी राह रोकती हैं लेकिन फिर भी अपने दायित्वों से ये कभी पीछे नहीं हटती हैं। यहां हम कुछ ऐसी आशा कार्यकर्ताओं के बारे में बताने जा रहे हैं जिन्होंने सरकारी उपेक्षा और अपनी निजी परेशानियों के बाद भी अपने जज्बे से एक मिसाल कायम की है–

पानो देवी/उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश के रामपुर जिले की बिलासपुर तहसील में कार्यरत आशा कार्यकर्ता पानो देवी की कहानी देश भर की आशाओं को प्रेरणा देती है। उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन करने के साथ ही मानवता का परिचय देते हुए ईंट–भट्ठे पर मजदूरी करने वाली एक महिला का सुरक्षित प्रसव कराया था। उनके इस सराहनीय कार्य को राज्य की आशायें पत्रिका में प्रकाशित भी किया गया था।

पानो देवी ने बताया कि एक दिन जब वह घर से अपने काम पर जा रही थीं, तभी रास्ते में ईंट–भट्ठे के पास से गुजरते समय उन्हें प्रसव पीड़ित महिला की कराहने की आवाज सुनाई दी। वे वहां महिला की झोपड़ी में गईं तो देखा कि उसका पति भी पास बैठा था। दोनों कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें। पूछताछ में पता चला कि उनकी आर्थिक स्थति खराब होने के कारण उन्होंने कोई जांच तक नहीं कराई थी। इस पर पानो देवी ने एंबुलेंस को फोन किया।

एंबुलेंस आने पर वे महिला को लेकर सीएचसी जाने लगीं, लेकिन रास्ते में एंबुलेंस में ही उसका प्रसव हो गया। तब पानो देवी ने महिला और उसके नवजात की अच्छी तरह देखभाल की। उनकी यह कहानी आशा कार्यकर्ताओं के लिए प्रदेश भर में प्रकाशित होनेवाली आशायें पत्रिका में भी छपी है, ताकि प्रदेश भर की आशा कार्यकर्ता इसे पढ़कर प्रेरणा ले सकें। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एनएचएम) लखनऊ कार्यालय से आई टीम ने पानो देवी पर एक डाक्यूमेंट्री भी बनाई थी। मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने बताया कि आशा कार्यकर्ताओं को प्रसव के संबंध में जरूरी प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि महिला को अस्पताल ले जाने तक वे उसकी देखभाल कर सकें। पानो देवी ने अपने प्रशिक्षण का सही और ससमय इस्तेमाल किया।

मनीता देवी/झारखंड

झारखंड के सरायकेला के उर्माल की रहनेवाली आंगनबाड़ी कार्यकर्ता मनीता देवी ने अपनी सूझ–बूझ और सतर्कता से एक बच्चे को जीवनदान दे दिया। उनकी कहानी सुन खुद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने ताली बजाकर उनका सम्मान किया। दरअसल, प्रधानमंत्री से लाइव बातचीत के दौरान इस घटना के संबंध में उन्हें बताया गया। मनीता ने बताया कि उन्होंने उर्माल इलाके में रहने वाली मनीषा देवी की प्रसव पूर्व सारी जांच की थी। 27 जुलाई 2018 की रात उन्हें मनीषा के प्रसव पीड़ा के बारे में जानकारी मिली। जबतक वह मनीषा के घर पहुंचतीं तब तक उसका प्रसव हो चुका था। प्रसव के बाद बच्चा रोता नजर नहीं आया तो घरवाले बोलने लगे कि बच्चा मरा हुआ है। पीएम मोदी के समक्ष इस लाइव शो में मनीता ने आगे बताया कि जब वह मनीषा के घर पहुंची तो उन्होंने घरवाले से बच्चा देखने की इच्छा जतायी। तब मनीषा के घरवाले बोले कि तुम बच्चा देखकर करोगी क्या? इसके बाद मनीता ने बच्चा दिखाने की जिद की तो मनीषा के घरवालों ने उसे बच्चा दे दिया। जब बच्चा मनीता की गोद में पहुंचा तो उसने देखा कि बच्चे की धड़कन चल रही है। तब मनीता ने जल्दी एक पाइप ली और बच्चे के नाक और मुंह से पानी निकाला। इसके तुरंत बाद बच्चा रोने लगा। मनीता ने फौरन बच्चे की मां को उसे अपना दूध पिलाने को कहा। इसके बाद नवजात और मां को अस्पताल ले जाने का काम किया, जहां दोनों का इलाज हुआ। इस घटना को सुनने के बाद पीएम मोदी ने जोर से ताली बजायी और मनीता की जमकर तारीफ की। पीएम ने कहा कि कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि आदिवासी इलाके में पैदा हुई मनीता ने अपनी सामान्य बुद्धि से बच्चे को बचाने का काम किया होगा। जो हिम्मत डॉक्टर दिखाते हैं, वह हिम्मत मनीता ने दिखाने का काम किया।

सलाम

रेलू वासवे/महाराष्ट्र

कहते हैं मजबूत इरादों और बुलंद हौंसलों के आगे दुनिया की हर मुश्किल छोटी पड़ जाती है। महाराष्ट्र से ताल्लुक रखने वाली 27 साल की रेलू वासवे की कहानी भी कुछ यही साबित करती है। दुबली–पतली सी दिखने वाली रेलू कोरोना महामारी के मुश्किल वक्त में भी नवजात बच्चों और गर्भवती महिलाओं की मदद के लिए हर रोज खुद नाव चलाकर 18 किलोमीटर लंबा कठिन सफर तय करती हैं।

दो बच्चों की मां रेलू आंगनबाड़ी कार्यकर्ता हैं। फर्ज की खातिर वो खुद रोजाना 18 किलोमीटर नाव चलाकर एक लंबा और मुश्किल सफर तय करती हैं ताकि इस सुदूर आदिवासी इलाके के नवजात बच्चों और गर्भवती महिलाओं को समय पर पौष्टिक आहार मिल सके। कोरोना वायरस के खिलाफ सिर्फ डॉक्टर्स, नर्स, मेडिकल स्टाफ, सफाई कर्मचारी और पुलिसकर्मी जैसे फ्रंटलाइन वारियर्स ही नहीं बल्कि आंगनबाड़ी कार्यकर्ता भी कंधे से कंधा मिलाकर इस जंग में आहूति दे रहे हैं। उन्हीं में से एक हैं महाराष्ट्र की रेलू वासवे जो परेशानियों के पहाड़ के बावजूद लोगों की मदद करने से पीछे नहीं हटीं। दरअसल रेलू जिस गांव में पदस्थ हैं वहां सड़क नहीं है। ऐसे में गांव तक पहुंचने के लिए लोगों को नाव का सहारा लेना पड़ता है और विशाल नदी पार करनी पड़ती है। लिहाजा रेलू ने नाव के जरिए आदिवासी बच्चों और गर्भवती महिलाओं तक पहुंचने का फैसला लिया। इसके लिए उन्होंने एक मछुआरे से नाव उधार ली और निकल पड़ीं फर्ज की राह पर। तमाम बाधाएं–अड़चनों के बाद भी रेलू के कदम नहीं डगमगाए। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता रेलू वासवे का काम 6 साल से कम उम्र के बच्चों और गर्भवती महिलाओं को समय पर पौष्टिक आहार मुहैया कराने के साथ ही उनके स्वास्थ्य और विकास पर नजर रखना है। 25 नवजात और कुपोषित बच्चों के साथ 7 गर्भवती महिलाओं को उचित पोषण मिल सके, इसके लिए रेलू मार्च महीने से हफ्ते में 5 दिन नाव से 18 किलोमीटर का सफर तय कर अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभा रही हैं। रेलू बताती हैं कि आमतौर पर गर्भवती महिलाएं अपने बच्चों के साथ आंगनबाड़ी केंद्र पर आती थी, जहां से उन्हे पौष्टिक आहार वितरित किया जाता था। लेकिन कोरोना के डर से आंगनवाड़ी आना बंद कर दिया।

मतिल्डा कुल्लू/उड़ीसा

उड़ीसा के सुंदरगढ़ जिले की मतिल्डा कुल्लू ने अपने काम से फोर्ब्स इंडिया डब्ल्यू–पावर 2021 सूची में जगह बनाई है। मतिल्डा एक मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा) एक कोविड योद्धा हैं। वह पिछले 15 वर्षों से सुंदरगढ़ जिले की बड़ागांव तहसील के गरगड़बहल गांव में काम कर रही हैं और स्वास्थ्य व्यवस्था को लोगों के करीब लाने में उनकी अहम भूमिका रही है। फोर्ब्स ने बताया कि मतिल्डा अपने दिन की शुरुआत सुबह 5 बजे करती हैं, घर के काम खत्म करती हैं, चार लोगों के परिवार के लिए दोपहर का भोजन तैयार करती हैं, और अपने दिन की शुरुआत घर–घर जाकर करने के लिए साइकिल चलाने से पहले मवेशियों को खिलाती हैं। अंधविश्वास, जातिवाद और अस्पृश्यता जैसी कई चुनौतियों का सामना करने वाली 45 वर्षीय महिला के लिए यह यात्रा आसान नहीं रही है। उन्हें ग्रामीणों को काले जादू पर भरोसा करना बंद करने और खुद का इलाज करने और उचित चिकित्सा मार्ग अपनाने के लिए शिक्षित करना था।

कोविड–19 ने जब भारत में पांव पसारा तो मतिल्डा कुल्लू का काम बढ़ गया। उन्होंने जरूरत से अधिक काम किया। 4,500 रुपये प्रति माह के मामूली वेतन पर गांव के लगभग 964 लोगों की देखभाल करती हैं। संतोषिनी बाग ने कहा कि घर के दौरे के अलावा, दवाइयां उपलब्ध कराना और प्रसव कराने वाली माताओं की मदद करना उनकी दिनचर्या है। मतिल्डा कुल्लू ने कहा कि मेरे नियमित कार्य प्रसवपूर्व, प्रसवोत्तर जांच, टीकाकरण, स्वच्छता, पोलियो और अन्य टीकों का प्रबंधन करना, सर्वेक्षण करना और इसी तरह मेरे असाइन किए गए क्षेत्र कार्य हैं। मैं लोगों के लिए और खासकर अपने गांव के लोगों के लिए काम करके बहुत खुश हूं। आज पहचान मिलने पर बहुत गर्व महसूस हो रहा है। मतिल्दा कुल्लू के प्रयासों से प्रभावित होकर हाल ही में फ़ोर्ब्स पत्रिका ने उन्हें देश की सबसे ताक़तवर महिला शख्सियतों की सूची में शामिल किया है। फ़ोर्ब्स की इस सूची में भारतीय स्टेट बैंक की पूर्व महाप्रबंधक अरुंधति भट्टाचार्य और बॉलीवुड अभिनेत्री सान्या मल्होत्रा जैसी महिलाएं शामिल हैं। मतिल्दा का नाम इसमें आने से पूरा देश उनके काम को सलाम कर रहा है।

सलाम

माया–वंदना / पटना

पटना की माया और वंदना के नाम बिहार में सबसे अधिक वैक्सीनेशन का रिकॉर्ड है। इस मुकाम तक पहुंचने के लिए दोनों हेल्थ वर्करों ने कई दिनों तक 24 घंटे काम किया और बीमारी में भी छुट्टी नहीं ली। इतना ही नहीं वैक्सीनेशन के लिए भी लोगों को तैयार किया है। माया और वंदना के इसी जज्बे से आज बिहार को गर्व है। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर दोनों हेल्थ वर्करों को केंद्रीय स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय सम्मानित करेगा।

माया उत्तर प्रदेश के गाजीपुर की रहने वाली हैं। पूरा परिवार गाजीपुर में रहता है और वह पटना में रहकर नौकरी करती हैं। वह केयर इंडिया की तरफ से 24 / 7 वैक्सीनेशन सेंटर में लगाई गई है। माया का कहना है कि जब उन्हें वैक्सीनेशन की जिम्मेदारी दी गई तो बड़ी चुनौती थी। जहां लोग दिन में वैक्सीनेशन के लिए नहीं आते थे वहां रात में टीका के लिए आना बड़ा मुश्किल था। लेकिन वह कई दिनों तक 24 घंटे काम कर लोगों को मोटिवेट करती रहीं और वैक्सीनेशन के लिए तैयार किया। माया ने पटना के गुरुनानक भवन स्थित वैक्सीनेशन सेंटर में अब तक 517 सेशन साइट में 27,3732 वैक्सीनेशन करने का रिकॉर्ड बनाया है।

गया की रहने वाली वैक्सीनेटर वंदना पाटलिपुत्रा स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स स्थित टीकाकरण केंद्र पर तैनात हैं। वह अब तक 240 सेशन साइट्स में 21,7400 टीकाकरण करा चुकी हैं। राज्य का सर्वाधिक टीकाकरण करने वाली वंदना बताती हैं कि उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि वैक्सीनेशन में वह कोई बड़ा रिकॉर्ड बना पाएंगी। लेकिन उन्होंने लोगों को मोटीवेट कर वैक्सीनेशन में बिहार का मान देश में बढ़ाया है। वंदना का कहना है कि कोरोना काल में भी वैक्सीनेशन के लिए हमेशा तैयार रहती थी। कई दिनों तक लगातार ड्यूटी की और बीमारी में भी काम किया है। अब रात में भी टीकाकरण हो रहा है।

नीतू देवी / बक्सर

राष्ट्रीय टीबी उन्मूलन कार्यक्रम के तहत जिले में टीबी मरीजों की जांच व इलाज को और भी सुलभ और सुविधाजनक बनाया जा रहा है। ताकि, मरीजों को किसी भी स्तर से परेशानी का सामना ना करने पड़े। इसमें फ्रंटलाइन वर्कर्स की भूमिका सबसे अहम है। सदर प्रखंड के पांडेय पट्टी स्थित वार्ड नंबर 10 की आशा कार्यकर्ता नीतू देवी ऐसे ही वर्कर्स में से एक हैं जिनके प्रयासों से पंचायतों और वार्ड में स्वास्थ्य की तस्वीर भी बदली। सदर प्रखंड के स्वास्थ्य उत्प्रेरक प्रिंस कुमार सिंह ने बताया, पांडेयपट्टी वार्ड नंबर 10 की आशा कार्यकर्ता नीतू देवी अपनी जिम्मेदारी के प्रति सदैव तत्पर रहती हैं। जिसके कारण उनके क्षेत्र के लोगों को स्वास्थ्य सेवाओं, सुविधाओं अभियान व कार्यक्रमों का पूरा लाभ मिलता है। इसके लिए उन्हें प्रखंड व जिला स्तर पर कई बार सम्मान मिल चुका है। जो अन्य आशा कार्यकर्ताओं के लिए नजीर हैं। बीसीएम ने बताया कि वर्ष 2016–17 में नीतू जी ने अपनी जिम्मेदारी पूरी करते हुए चार टीबी मरीजों को ठीक कराया था। जिनमें क्रमशः इंदु देवी, गीता देवी, मुन्ना यादव व संजय सिंह शामिल हैं। जिन्होंने नीतू की निगरानी में 9 से 11 महीनों के भीतर ही टीबी को मात दे दी थी।

आशा कार्यकर्ता नीतू देवी का कहना है कि शुरू से ही वो बस एक मंत्र के तहत कार्य करती हैं। जो यह है कि जिले में संचालित सभी योजनाओं और सेवाओं का लाभ वार्ड स्तर के लोगों व ग्रामीणों तक पहुंच सके। सरकार जरूरतमंद लोगों व मरीजों के लिए सभी सेवाओं व सुविधाएं निःशुल्क उपलब्ध करा रही है, जिसका लाभ कई लोग बस जानकारी के अभाव में नहीं उठा पाते। ऐसे में हम फ्रंटलाइन वर्कर्स की नैतिक जिम्मेदारी है कि हम स्वास्थ्य विभाग द्वारा दी जाने वाली सभी सेवाओं और योजनाओं को पंचायत व वार्ड स्तर के जरूरतमंदों और लाभुकों तक पहुंचा सकें। टीबी चैम्पियन इंदु देवी ने बताया कि वर्ष 2016 में उन्हें खांसी की शिकायत थी। आलम यह था कि कई बार खांसी के दौरान खून भी निकलता था। जिसके बाद वे अपने क्षेत्र की आशा नीतू से मिली और सारी बातों से अवगत कराया। नीतू ने तत्काल उन्हें टीबी जांच कराने की सलाह दी और टीबी सेंटर भेजा। उसके बाद उनका इलाज शुरू हुआ।

सलाम

रमा साहू/उड़ीसा

कोविड के दौरान उड़ीसा की रमा साहू जब घर–घर सर्वे करने निकलतीं और मुस्कुराकर सवाल पूछतीं तो उस मुस्कान के पीछे का दर्द कोई नहीं जान पाता। कैंसर से जूझ रहीं रमा साहू जीजान से अपना काम करती जाती हैं और बीमारी उनकी हिम्मत के आगे हार जाती है। 46 साल की रमा एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता हैं जो कई सालों से कैंसर से पीड़ित हैं। वह गंजाम ज़िले में खंडारा गांव में रहती हैं और इस जानलेवा बीमारी के बावजूद भी पूरी निष्ठा से अपना फ़र्ज़ निभा रही हैं। वह गर्भाशय कैंसर की अंतिम स्टेज पर हैं और डॉक्टरों ने भी जवाब दे दिया है। उन्हें दिनभर वयस्कों के डाइपर का इस्तेमाल करना पड़ता है।

रमा साहू रोज आंगनबाड़ी के लिए निकल जाती हैं। उनके इलाक़े में 201 घर आते हैं। जहां सर्वे के लिए उन्हें पैदल ही धूप में हर एक घर में जाना पड़ता है। राशन बांटने, खाने बनवाने से लेकर लोगों को जागरुक करने का काम करना होता है। रमा साहू का कहना है कि यही काम उनकी तकलीफ़ को कम कर देता है। वो कहती हैं, "जब मैं काम करती हूं तो मुझे कोई दिक्कत याद नहीं रहती। काम में ही मन लगा रहता है। ऐसे समय में हमारी ज़रूरत है तो हमें काम करना ही होगा।" उनके पति रमेश चंद्र साहू गांव में ही किराना की एक दुकान चलाते हैं। पहले वो महाराष्ट्र में रहते थे और लेबर कॉन्ट्रैक्टर का काम करते थे। जब पत्नी की बीमारी लाइलाज हो गई तो वो सब छोड़कर गांव लौट आए ताकि पत्नी का ख्याल रख सकें। रमेश साहू बताते हैं, "कोई नहीं जानता कि वो डाइपर पहनकर काम कर रही है और इतनी दूर चल रही है। जब उसे बहुत दर्द हो जाता है तभी वो घर पर रहती है। घर पर वो अकेले में बहुत रोती है लेकिन काम के दौरान हर तकलीफ भूल जाती है। कुछ अधिकारी अच्छे हैं तो छुट्टी लेकर आराम करने के लिए भी बोलते हैं।" रमा साहू पर तो मुश्किलों का पहाड़ तभी टूट पड़ा था जब उन्होंने अपने दोनों बच्चों को खो दिया था। उस वक़्त रमेश चंद साहू महाराष्ट्र में काम कर रहे थे और अपने घर आते–जाते रहते थे। रमेश साहू बताते हैं, "अचानक ही हमारे तीन महीने के छोटे बच्चे की मौत हो गई और उसके छह महीने बाद दूसरे बच्चे की भी मौत हो गई। हमारी तो जैसे दुनिया ही खत्म हो गई थी। ये सब कैसे हुआ हमें पता ही नहीं चला। तब तक हम लोग परिवार नियोजन के तहत नसबंदी भी करा चुके थे।"

ज्योत्सना/उड़ीसा

''मेरे पास ज्योत्सना के लिए कोई शब्द नहीं हैं। उसने मेरी और मेरे बच्चे की जान बचाई है। मैं भयानक प्रसव पीड़ा में थी। लोग मेरे लिए एंबुलेंस की तलाश कर रहे थे। लेकिन एक–एक कर तीन अस्पतालों ने एंबुलेंस भेजने से इंकार कर दिया। मुझे लगा मैं मर रही हूं, लेकिन तभी ज्योत्सना ने मेरा हाथ पकड़ लिया और आज मैं और मेरे बेटी दोनों जीवित हैं, स्वस्थ हैं''– एक आशा कार्यकर्ता के लिए ये भाव हैं 39 साल की आरती के। उड़ीसा के बौध जिले में रहने वाली आरती दलित समुदाय से हैं। उनके पति विक्रम दिहाड़ी मजदूर हैं लेकिन 2020 में कोरोना के कारण उनके पास कोई काम नहीं था। उन्हीं दिनों आरती गर्भवती हो गई और कुछ मेडिकल परेशानियों के कारण उनकी हालत खराब हो गई। गांव में वे आशा कार्यकर्ता ज्योत्सना साहू (41) के लगातार संपर्क में थीं।

गर्भ के आठवें महीने में आरती को खून की कमी हो गई और उन्हें 45 किलोमीटर दूर जिला स्वास्थ्य केन्द्र सोनपुर में जाकर खून चढ़वाना पड़ा था। जाहिर है उसके गांव के आस–पास में कोई अस्पताल नहीं था। प्रसव के दिन 28 जून को जब तीन अस्पतालों ने एंबुलेंस भेजने से इंकार कर दिया तो ज्योत्सना ने किसी तरह 102 एंबुलेंस से संपर्क किया। उसने राष्ट्रीय एंबुलेंस सेवा को भी कॉल किया जिनकी मदद से रात को 1 बजे आरती को 100 किलोमीटर दूर बालंगीर के जिला अस्पताल में पहुंचाया गया लेकिन उसकी खराब हालत को देखते हुए डॉक्टरों ने केस लेने से मना कर दिया। ज्योत्सना ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी और डॉक्टरों से गुहार लगाई कि वे आरती की डिलीवरी करवाएं। वह वरीय स्वास्थ्य प्रशासन के पास भी गईं और प्रसव कराने की प्रार्थना की। आखिरकार 29 जून की सुबह आरती का प्रसव कराया गया और प्रियदर्शिनी का जन्म हुआ। आरती को सात दिनों के लिए अस्पताल में रखा गया। दंपति के पास पैसे नहीं थे, तो ज्योत्सना ने अपने परिजनों से पैसे उधार लेकर आरती–विक्रम को दिए। आज प्रियदर्शिनी 9 महीने की है और आरती खुश और स्वस्थ है। एक आशा कार्यकर्ता के इस उपकार को वो किसी से भी बताना नहीं भूलते हैं।

सुधि ले सरकार

आशा जैसी योद्धाओं को मिलीं सुविधाएं मगर ये भी कम

देश भर की आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को 50–50 लाख रुपये के बीमा की घोषणा, मिलेगी पेंशन

आशा कार्यकर्ताओं और आंगनबाड़ी सेविका–सहायिकाओं का हमारे देश और समाज में क्या महत्व है, यह कोविड के दौरान पूरी तरह उजागर हो चुका है। अफसोस इस बात का है 24 घंटे की नौकरी करने के बाद भी न तो इन्हें सम्मानजनक मानदेय मिल पाया है और न ही किसी प्रकार की अन्य सुविधा। हालांकि सरकार ने अब इनके महत्व को समझना शुरू किया है और कुछ लाभों तथा सुविधाओं की घोषणा की है, लेकिन उनके कामों को देखते हुए यह भी कुछ नहीं है।

मिलेगा 50–50 लाख रुपये का बीमा लाभ

केंद्र सरकार ने देशभर की आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को 50–50 लाख रुपये का बीमा लाभ देने का ऐलान किया है। योजना के तहत 13 लाख से अधिक आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और 11 लाख से अधिक सहायिकाओं को बीमा सुविधा मिलेगी। यह बीमा लाभ प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना में मिलेगा। इससे 24 लाख कार्यकर्ता लाभांवित होंगी। इससे पहले 2018 में प्रधानमंत्री ने एक वर्चुअल कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने कहा था कि आशा कार्यकर्ताओं को प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना मुफ्त में दी जाएंगी। उन्होंने कहा था कि इसका मतलब हुआ कि दो–दो लाख रूपये की इन दोनों बीमा योजना के तहत कोई प्रीमियम नहीं देना होगा और यह खर्च सरकार उठायेगी।

उल्लेखनीय है कि कोरोना काल में आंगनबाड़ी और आशा कार्यकर्ता ड्यूटी पर रहते हुए जोखिम भत्ता और बीमा कवर को लेकर मांग कर रही थीं। ये कार्यकर्ता नियुक्तियों को नियमित करने की मांग को लेकर भी देशव्यापी हड़ताल कर रहीं थीं। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता उत्तर प्रदेश समेत देश के कई राज्यों में वेतन बढ़ाने की भी मांग कर रही हैं। वे अपने सामान्य काम और कोरोना ड्यूटी के अलावा कोरोना टीकाकरण अभियान में भी सक्रिया योगदान दे रही हैं।

सामान्य प्रोत्साहनों को दोगुना करने की घोषणा

इस बीच, प्रधानमंत्री मोदी ने आशा और आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के पारिश्रमिक में उल्लेखनीय वृद्धि करने की भी घोषणा की। वीडियो ब्रिज के जरिए लाखों आशा, आंगनबाड़ी और एएनएम कार्यकर्ताओं के साथ हुए संवाद के दौरान प्रधानमंत्री ने केन्द्र सरकार द्वारा आशा कार्यकर्ताओं को दिए जाने वाले सामान्य प्रोत्साहनों को दोगुना करने की घोषणा की। प्रधानमंत्री ने आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को दिए जाने वाले मानदेय में भी उल्लेखनीय वृद्धि करने की घोषणा की। अब तक जिन लोगों को 3,000 रुपये दिए जाते थे उन्हें अब 4,500 रुपये मिलेंगे। इसी तरह अब तक 2,200 रुपये प्राप्त करने वाले लोगों को 3,500 रुपये मिलेंगे। आंगनबाड़ी सहायिका के लिए निर्धारित मानदेय को भी अब 1,500 रुपये से बढ़ाकर 2,250 रुपये कर दिया गया है। प्रधानमंत्री ने यह भी घोषणा की कि विभिन्न तकनीकों जैसे कि कॉमन एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर (आईसीडीएस–सीएएस) का उपयोग करने वाली आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिका को अतिरिक्त प्रोत्साहन प्राप्त होंगे। 250 रुपये से लेकर 500 रुपये तक के प्रोत्साहन आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिका के प्रदर्शन पर आधारित होंगे। साथ ही, समाज का ऐसा वर्ग जिससे सरकार से किसी भी प्रकार की पेंशन नहीं मिलती हैं, उन्हें अब अटल पेंशन के दायरे में लिया जाएगा। इसमें आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, आशा कार्यकर्ता सहित संगठित एवं असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों को भी शामिल किया जाएगा, जिन्हें किसी भी प्रकार की कोई पेंशन नहीं दी जा रही है।

Sudha
Milk and Milk Products
वादा शुद्धता का

Empowering Women through Dairy Co-operatives

India is a leading dairy economy with a vast number of milk producers organized into mixed-gender cooperatives. **COMFED** also undertakes supportive activities of Milk Producers for income and social security which includes 4258 Women Dairy Co-operatives exclusively run by women.

COMFED giving them opportunities to emerge as leaders in taking decisions and to participate in day-to-day dairy activities to make a positive change in their lives and to their families.

Supportive Programmes & Benefits:

- **Sat Nischay-2**, an ambitious scheme of the State Government under **"Aatamnirbhar Bihar 2020-25"** with an objective to improve access to Milk Co-operatives and provide good quality Sudha Products
- Provides Balanced Cattle feed
- Artificial Insemination Programme & inclusion in Management Committee
- Cattle Insurance, Cattle Purchase on Subsidy & Vaccination
- Assistance in installation of Biogas Plant
- Around 13 lakh families are benefitted

COMFED

BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.

E-mail: comfed.patna@gmail.com • Toll Free No.: 18003456199 • www.sudha.coop

Dairy Entrepreneurship - Empowering women, empowering life

Dot Communications_Comfed_Women Empowerment_Magazine Ad_Size A4

गुमनाम

हमारी अच्छी सेहत के लिए बीमार 'वो'!

तेरा दर्द न जाने कोय : सामाजिक, आर्थिक व स्वास्थ्य हर मोर्चे पर खस्ताहाल सफाईकर्मी

फोटो: पीटीआई

- कोराना काल में निजी सुरक्षा उपकरणों के अभाव में 25 सफाईकर्मियों की मौत हो गई।
- पिछले पांच सालों में सीवर और सेप्टिक टैंकों की सफाई के दौरान 37 लोगों की जान चली गई।
- देश में महिला सफाईकर्मियों में बढ़ रहे सर्वाइकल कैंसर के मामले

हमारे घरों में अगर एक दिन सफाईकर्मी नहीं आए तो सबकुछ कैसा गंदा–गंदा सा लगने लगता है। जरा सोचिए, उनके जीवन में स्वच्छता लाने के लिए हमने क्या किया है। वो गंदगी में रहते हैं, पर हमारी सफाई की आदत को बिगड़ने नहीं देते। हम बीमा. रियों से बचे रहें, इसके लिए वो खुद कितनी ही संक्रामक रोगों और गंभीर बीमारियों की चपेट में आकर दम तोड़ देते हैं। अभी कोरोना महामारी ठीक से खत्म भी नहीं हुई है, तो हम उनके बलिदान को कैसे भूल सकते हैं। जब हम डबल मास्क पहनकर भी घर से बाहर निकलने से डरते थे, तब ये सफाईकर्मी बिना किसी समुचित सुरक्षा उपकरण के सड़कों, अस्पतालों और अन्य जरूरी जगहों पर सफाई के काम में लगे रहते थे। कभी हमने उनकी समस्याओं को जानने की कोशिश नहीं की।

व्यावसायिक जोखिम और खतरे

वर्ष 2017 में, डेलबर्ग एडवाइज़र द्वारा सफाई कर्मचारियों पर किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि भारत में करीब 50 लाख सफाई कर्मचारी हैं, इनमें 25 लाख कामगारों को व्यवसायिक जोखिमों और खतरों का सामना करना पड़ता है। लगभग 45 प्रतिशत सफाई कामगार शहरों में काम करते हैं। हालांकि ग्रामीण इलाकों में काम करने वाले सफाई कर्मचारियों की तुलना में इनकी संख्या कम है लेकिन यहां इन्हें सीवर, सेप्टिक टैंक की सफाई जैसे ज्यादा जोखिमपूर्ण कार्य करने होते हैं। शहरों में सफाई का काम करने वाले कामगारों में 50 प्रतिशत संख्या महिलाओं की है जिनमें अधिकांश स्कूलों के शौचालयों की सफाई में लगी हैं। हालांकि खुद उनके लिए शौचालयों की कोई व्यवस्था नहीं होती। महिला सफाईकर्मियों की सुरक्षा का भी ध्यान किसी को नहीं होता।

गुमनाम

न छुट्टी, न सम्मानजनक वेतन

सफाई कामगारों की यही सच्ची सेना है जो भारतीय शहरों को स्वच्छ रखती है। उनके काम के बिना भारत का स्वच्छ, हरित और संवहनीय शहरों का सपना दूर का सपना बना रहेगा। एक स्वयंसेवी संगठन प्रिया द्वारा कराए गए एक अध्ययन के दौरान मुजफ्फरपुर नगर निगम में स्थाई तौर पर नियुक्त सफाई कर्मचारी शकुंतला देवी कहती हैं, ''शहर में दो तरह के लोग रहते हैं। कचरा पैदा करने वाले और कचरा फेंकने वाले। परन्तु शहरी स्वच्छता सिर्फ नगर निगम की जिम्मेदारी नहीं है। आम लोगों को भी अपना काम ठीक से करना चाहिए। उनको कचरा इधर–उधर नहीं फेंकना चाहिए।'' प्रिया के अध्ययन से पता चलता है कि सफाई कामगार तीन प्रकार के अनुबंधों के अंतर्गत नियुक्त किए जाते हैं– नगर निगम के स्थाई कर्मचारी, नगर निगम के ठेके के कर्मचारी और बाहरी स्रोतों से लाए गए कामगार। स्थाई कर्मचारियों का वेतन सबसे अधिक होता है जिसमें विभिन्न प्रकार के अन्य लाभ भी शामिल हैं, जैसे, अर्जित अवकाश, स्वास्थ्य लाभ, पेंशन वृत्ति में अंशदान तथा भविष्य निधि। नगर निगम में ठेके पर काम करने वाले कर्मचारियों को समान काम के लिए स्थाई कर्मचारियों के वेतन के आधे से लेकर चौथाई हिस्से तक वेतन प्राप्त होता है। जबकि ठेके पर अथवा बाहर से लिए गए कामगारों को वेतन के अलावा कोई लाभ नहीं प्राप्त होता है। सफाई कामगारों को अगर हम स्त्री–पुरुष की श्रेणी में बांट दें तो अन्याय का एक बड़ा अंतर दिखेगा। महिला सफाई कामगार एक ऐसे समाज में रहती हैं जहां पितृसत्ता की प्रधानता है, जिससे निम्न जाति की महिलाओं पर घर और बाहर के काम का दोहरा बोझ पड़ता है। असमानता, जाति तथा अपने व्यवसाय के कारण वे सभी तरह के कामगारों में सबसे ज्यादा कमजोर स्थिति में होती हैं। संविदा कर्मियों के रूप में कार्य करना भय, जोखिम तथा अपर्याप्तता के अनुभवों को दोहराता है। दिहाड़ी पर नियुक्त कामगार यदि एक दिन की भी छुट्टी लेते हैं तो उनको अपनी नौकरी खोने का बराबर डर बना रहता है। ''गरीब का जिंदगी है, कमाएंगे तो खाएंगे, नहीं तो भूखे मर जाएंगे'', ऐसा मुजफ्फरपुर की एक महिला सफाई कामगार का कहना था। ''सुबह खाना होता था, तो शाम को नहीं'', ऐसा झाँसी की एक महिला सफाई कामगार का कहना था। महिला सफाई कामगार या तो काम करे या भूखी मर जाए।

सांस और त्वचा की बीमारियां

शहरों में स्वास्थ्य और स्वच्छता बनाए रखने में स्ट्रीट स्वीपर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह काम सड़क पर सफाई करने वालों को धूल, बायोएरोसोल, वाष्पशील कार्बनिक पदार्थ और यांत्रिक तनाव जैसे विभिन्न जोखिम कारकों के संपर्क में लाता है, जो उन्हें कुछ व्यावसायिक रोगों के लिए अतिसंवेदनशील बनाते हैं। इन श्रमिकों में पाई जाने वाली महत्वपूर्ण स्वास्थ्य स्थितियों में शामिल हैं– श्वसन प्रणाली और आंख, दुर्घटनाएं, चोट, कट और घाव, त्वचा में संक्रमण, जानवरों के काटना, आदि।

वर्तमान में, औद्योगिक देशों में नगरपालिका ठोस कचरे के प्रबंधन के मानकों और मानदंडों ने व्यावसायिक स्तर पर स्वास्थ्य प्रभावों को काफी हद तक कम कर दिया है। हालांकि, विकासशील देशों में, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को अभी भी संबोधित करने की आवश्यकता है। कर्मचारी हाथों से कचरा इकट्ठा करते हैं। श्रमिकों को सीधे संपर्क और चोट से बचाने के लिए बहुत कम, या नहीं के बराबर इंतजाम होते हैं, और निश्चित रूप से कार्यस्थलों पर कोई धूल नियंत्रण नहीं होता है। नागपुर में सफाईकर्मियों के स्वास्थ्य पर कराए गए एक अध्ययन में पाया गया कि सड़क पर सफाई करने वालों में, आमतौर पर श्वसन प्रणाली (15%) प्रभावित होती है, इसके बाद हृदय प्रणाली (9.9%) और आँखें (9.2%) प्रभावित होती हैं। पिछले साल इंदौर में महिला सफाईकर्मियों की स्वास्थ्य जांच में पाया गया कि उनमें सर्वाइकल कैंसर होने का खतरा बढ़ रहा है। ज्यादातर औरतों में यह बीमारी अपने प्रारंभिक अवस्था में थी। चिंता की बात ये है कि अशिक्षा और सुविधा की कमी के कारण ये महिला सफाईकर्मी अंत समय तक अपनी बीमारी के बारे में नहीं जान पाती हैं और अंततः जान गंवा देती हैं।

श्रोतः thewirehindi.com/priya/www.ncbi.nlm.nih.gov

फोटोः रायटर

बेमिसाल

एक नया इतिहास रच रहीं स्वच्छताकर्मी

प्रेरणा का श्रोत हैं सफाई कर्मचारी से असिस्टेंट बैंक मैनेजर बनी प्रतीक्षा टोंडवलकर

मेहनत आपका भविष्य सुधार सकती है। इसका एक उदाहरण पेश किया है प्रतीक्षा ने। बैंक में सफाई करने वाली एक महिला ने अपनी मेहनत और लगन से सफलता हासिल की है। 1964 में एक गरीब परिवार में जन्मी प्रतीक्षा टोंडवरकर स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में कार्यरत हैं। अब उन्हें एसबीआई ने असिस्टेंट जनरल मैनेजर के पद पर प्रमोट किया गया है। महज 20 साल की उम्र में प्रतीक्षा के पति का निधन हो गया। परिवार का सहारा बनने और खुद के पैरों पर खड़े होने के लिए प्रतीक्षा ने बैंक में बतौर सफाईकर्मी नौकरी करना शुरू किया था। वह मेहनत करती रही और 37 साल बाद देश के सबसे बड़े बैंक में एक शीर्ष अधिकारी के पद तक पहुंच गई। प्रतीक्षा टोंडवलकर पुणे की रहने वाली हैं। उनकी शादी महज 17 साल की उम्र में हो गई थी। उस दौरान प्रतीक्षा ने 10वीं भी नहीं किया था। उनके पति एसबीआई में बुक बाइंडर का काम करते थे। शादी के एक साल बाद बेटे विनायक का जन्म हुआ। लेकिन एक हादसे में पति की मौत हो गई तो प्रतीक्षा के कंधों पर पूरे परिवार की जिम्मेदारी आ गई। परिवार और बेटे के भविष्य को सुधारने के लिए प्रतिक्षा ने नौकरी करने की ठानी, हालांकि पढ़ाई पूरी न होने के कारण वह किसी अच्छी नौकरी के काबिल नहीं थीं। लेकिन पति के बैंक ने प्रतीक्षा को नौकरी देने का फैसला लिया। इसी बैंक में प्रतीक्षा सफाई कर्मचारी बन गईं। वह प्रतिदिन सुबह बैंक ब्रांच में झाड़ू लगाती, साफ–सफाई करतीं। इस काम के लिए उन्हें महीने के 60 से 65 रुपये मिलते थे। प्रतीक्षा जब बैंक पर लोगों को डेस्क वर्क करते देखतीं तो वह भी यहीं काम करना चाहती। उन्होंने 10वीं की परीक्षा देने का फैसला लिया। रिश्तेदारों, दोस्तों और बैंक कर्मचारियों ने उनकी पढ़ाई में मदद की। प्रतीक्षा ने 10वीं 60 फीसदी अंकों से पास की। फिर 12वीं का एग्जाम दिया। एक नाइट कॉलेज से मनोविज्ञान की स्नातक डिग्री हासिल की। पढ़ाई पूरी होने पर उन्हें बैंक में क्लर्क के तौर पर पदोन्नति मिल गई।

सड़क का कचरा साफ करने वाली महिला बनी एसडीएम

कहते हैं कि जहां चाह होती है, वहीं राह होती है। इस बात को सच कर दिखाया है राजस्थान के जोधपुर नगर निगम में सफाई का काम करने वाली आशा कंडारा ने। एक साल पहले तक वे कचरा साफ करने वाली एक सामान्य सफाईकर्मी थीं। जिस महिला को पूरे इलाके में कोई पहचानता भी नहीं था, अब वे उसी इलाके की एसडीएम के रूप में जानी जाती हैं। आशा कंडारा शुरुआत से ही अपना बड़ा नाम करना चाहती थी, परंतु आठ साल पहले आशा का तलाक हुआ और उनके दोनों बच्चों की जिम्मेदारी आशा के कंधो पर आ गई, जिससे उन्हें बच्चों के पालन–पोषण के लिए सफाई कर्मचारी का काम करना पड़ा। यहां भी उन्हें परमानेंट होने के लिए काफी लड़ाइयां लड़नी पड़ी। आशा बताती हैं कि वह काम पर अपनी किताबें लेकर ही आती थी और जहां भी उन्हें समय मिलता, वह वहीं पढ़ने बैठ जाती थी। सफाई कर्मचारी का काम करते–करते ही आशा ने अपनी स्नातक की परीक्षा भी पास की। और आज वह इस मुकाम पर हैं।

बेमिसाल

'स्वच्छांगिनी': पटना नगर निगम की चैम्पियन

पटना नगर निगम ने समाज के सबसे वंचित वर्ग की महिलाओं को मुख्यधारा में लाने और उन्हें आर्थिक तौर पर समर्थ बनाने के लिए एक ऐतिहासिक कदम उठाया है। अब तक जो काम पूरी तरह से पुरुषों के जिम्मे था, उसे अब महिलाओं के हाथों में सौंप दिया गया है। नगर निगम ने स्लम बस्ती की महिलाओं को मेनहोल की मशीन से सफाई करने से लेकर गाड़ी चलाने तक का काम दिया है। इसके लिए उन्हें दो महीने की ट्रेनिंग में ऑटोमेटिक जेट क्लीनिंग मशीन चलाना, ड्राइविंग करना और अन्य काम सिखाया जाता है। सशक्त महिलाओं की इस बेमिसाल टीम को 'स्वच्छांगिनी' नाम दिया गया है।

पटना में स्वच्छांगिनी की टीम को प्रशिक्षण दे रहे यूएनएफपीए और दीक्षा फाउंडेशन के प्रतिनिधियों सुश्री शेफाली भारद्वाज और नवीन कुमार ने बताया कि स्वच्छांगिनी की टीम हर दिन पटना के अलग–अलग इलाकों में जाकर मेनहोल की सफाई कर रही हैं। सीवरेज के बड़े–बड़े भारी ढक्कन हाथों से हटाना और मेनहोल की सफाई करना इनके रुटीन वर्क में शामिल है। टीम में शामिल महिलाएं कहती हैं कि प्रशिक्षण के बाद जब हमने इस काम को शुरू किया तो आस–पास के लोग या हमारे पुरुष साथी हमारा मजाक उड़ाते थे। कहते थे कि औरतें इतना कठिन काम नहीं कर सकती हैं। खासकर मेनहोल का ढक्कन हटाना और लगाना बेहद कठिन था। लेकिन हम महिलाओं ने भी ठान लिया था कि हम ये करके दिखाएंगे। पहली बार ढक्कन हटाने में हम सफल नहीं हो पाए लेकिन दूसरी बार हम पांचों ने मिलकर जोर लगाया और कर दिखाया। हमारी मेहनत और कामयाबी देखकर फिर उन्हीं लोगों ने तालियां बजाईं। हमारे साथ फोटो लिया, वीडियो बनाया। इसके बाद हमारा हौसला कई गुना बढ़ गया। फिर चाहे मशीन चलाना हो या बड़ी गाड़ी, हमने पूरे आत्मविश्वास के साथ हर काम को सीखा और उन्हें आजमाया।

स्वच्छांगिनी को चार टीमों में बांटा गया है और उन्हें गंगा, यमुना, नर्मदा और गोदावरी नाम दिया गया है। हर टीम में पांच महिला सदस्य और क्लीनिंग मशीन की यूनिट शामिल होती है। मेनहोल की सफाई से लेकर मशीनों और आस–पास की सफाई का काम भी ये महिलाएं खुद करती हैं। स्वच्छांगिनी टीम की अध्यक्ष और सदस्य रानी देवी बताती हैं कि इस काम को करने से उनका आत्मविश्वास कई गुना बढ़ गया है। पहले जहां साड़ी के अलावा कोई परिधान पहनने की इजाजत तक नहीं थी वहीं अब हम महिलाएं नगर निगम की यूनिफॉर्म जंप सूट में बाहर निकलती हैं। रानी कहती हैं कि शुरू–शुरू में सिर्फ पति का ही सपोर्ट मिला, परिवार के बाकी सदस्यों ने हमारा विरोध किया लेकिन जब सरकार और समाज के बाकी लोगों ने हमें हीरो के रूप में प्रस्तुत किया तो परिवार के लोग भी हमारे सपोर्ट में आ गए। इंदु देवी, जो कि स्वच्छांगिनी टीम की उपाध्यक्ष भी हैं, कहती हैं कि वो इस काम में बिल्कुल भी आना नहीं चाहती थी। उनके तीन बच्चे हैं और उनका पालन वो खुद करती हैं। इंदु के पति उनके साथ नहीं रहते हैं। वो बताती हैं कि जब उन्हें इस काम के बारे में पता चला तो पहले तो

वो इसके लिए तैयार नहीं थी। मशीन और गाड़ी चलाने की बात सुनकर उन्हें थोड़ा डर लग रहा था। लेकिन जब मैम और सर ने उन्हें समझाया तो वो प्रशिक्षण लेने के लिए तैयार हो गईं। उसके बाद तो मशीन चलाना उनकी आदत बन गई। कहती हैं कि यूनिफॉर्म पहनने और मशीन चलाने में उन्हें फिर कोई झिझक या शर्म महसूस नहीं हुई। उन्होंने अपने मोहल्ले में भी ये काम बिना संकोच किया। पूजा, गुड्डी, रिंकू और आरती देवी समेत 14 और महिलाएं इस बेमिसाल टीम का हिस्सा हैं। सभी स्लम बस्ती से हैं और आज आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं। पूजा कहती हैं कि पहले पति से पैसे मांगने पड़ते थे, आज वो खुशी से देते हैं और हम लेने से मना कर देते हैं। गुड्डी ने बताया कि मुझे मशीन देखकर विश्वास नहीं था कि मैं इसे चला पाऊंगी लेकिन जब प्रशिक्षण मिला तो 2–3 दिन में ही मैं अच्छे से गाड़ी चलाना सीख गई। अब डर नहीं लगता है। स्वच्छांगिनी की पूरी टीम उत्साह से लबरेज है। कई पति और परिवार के साथ रहती हैं तो कुछ अकेले। लेकिन अब उन्हें अपने आने वाले कल की चिंता नहीं है। अपने बच्चों का दाखिला उन्होंने स्कूल में करवा दिया है। उनके सुरक्षित भविष्य के लिए बीमा करवा लिया है। सरकार की ओर से उनके नाम से आयुष्मान कार्ड भी बनवा दिए गए हैं। ये सब बिहार सरकार की महिलाओं के प्रति संवेदनशील नीतियों के कारण संभव हो पाया है।

रानी देवी ये कहते हुए गर्व से भर जाती हैं कि मैंने अपने पिता की बीमारी के समय उनका इलाज अपने पैसे से करवाया। हालांकि इन महिलाओं को ढूंढना और उन्हें यहां तक पहुंचाना कम चुनौतीपूर्ण नहीं था। लेकिन पटना नगर निगम का उनमें दृढ़ विश्वास और यूएनएफपीए तथा दीक्षा फाउंडेशन के प्रशिक्षण और प्रेरणा से ये सब बहुत कम समय में ही संभव हो गया। नवीन कुमार कहते हैं कि अभी आगे और भी काम बाकी है। महिलाओं को नए क्षेत्रों में लाना और उन्हें प्रशिक्षित करना है।

रेणु देवी

दीघा मुसहरी में अपने पति और एक बच्चे के साथ रह रही रेणु देवी एक सफाई कर्मचारी हैं। साथ ही वह घरेलु दाई के तौर पर भी काम करती थीं। लेकिन घर की स्थिति इतनी बुरी थी कि उस कमाई में घर चलाना मुश्किल था। खासकर दलित होने की वजह से समाज में सम्मान के साथ जीना दूभर था। पिछले साल उनके इलाके में जब स्वच्छांगिनी की टीम काम कर रही थी तो रेणु देवी को लगा कि इस काम को वो भी कर सकती हैं। यह काम पूरी तरह से मशीन से किया जाने वाला है और सम्मानजनक है। रेणु ने भी प्रशिक्षण लेना शुरू किया और जल्दी ही सभी कौशल को सीख लिया। इसके बाद निगम की ओर से उन्हें काम में लगाया गया। अब उनकी जिंदगी पूरी तरह बदल चुकी है।

बेमिसाल

रानी देवी

37 साल की रानी देवी पटना के चीना कोठी स्लम बस्ती में अपने परिवार के साथ रहती हैं। उन्हें पढ़ने का शौक था लेकिन गर्भवती होने के कारण दसवीं की परीक्षा नहीं दे पाईं। उसी समय उन्होंने तय कर लिया था कि अपने बच्चों को वो जरूर पढाएंगी। कुछ दिनों तक उन्होंने घर पर बच्चों को ट्यूशन भी पढ़ाया लेकिन उससे बच्चों की पढ़ाई का खर्च पूरा नहीं हो पाता था। उसके बाद उन्होंने सफाई कर्मचारी के तौर पर काम किया, घरेलू दाई और सुलभ शौचालय में भी काम किया लेकिन समाधान नहीं निकला। पिछले साल जब उन्हें पटना नगर निगम और यूएनएफपीए की मुहिम स्वच्छांगिनी के बारे में सुना तो वो तुरंत ही इसमें शामिल हो गईं। उनके काम को मीडिया और समाज के सभी वर्गों ने पहचाना और उन्हें सम्मान दिया।

इंदु देवी

पटना के चीना कोठी स्लम बस्ती में रहने वाली 28 साल की इंदु देवी एकल मां हैं। इंदु की शादी सिर्फ 14 साल की उम्र में कर दी गई थी और उसके बाद एक–एक कर उसे तीन बेटियां हुईं। उसके सास–ससुर और पति उसपर बहुत अत्याचार करते और शारी. रिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करते थे। 2016 में पता चला कि उसके पति ने दूसरी शादी कर ली है। उसके बाद से पूरे परिवार की जिम्मेदारी इंदु के कंधों पर ही आ गई। उन्होंने आस–पास के घरों में काम करना शुरू कर दिया। लॉकडाउन में दो बेटियों की पढ़ाई भी छूट गई। पिछले साल उन्हें स्वच्छांगिनी के बारे में पता चला और वे प्रशिक्षण में शामिल हो गईं। अब वे खुश हैं। अपनी दोनों छोटी बेटियों को पढ़ाना चाहती हैं और बड़ी बेटी की शादी अच्छे घर में करना चाहती हैं।

ज्ञांति देवी

24 साल की ज्ञांति देवी पटना के दीघा मुसहरी में रहती हैं। वे कचरा चुनने वाली हैं। उनकी कोई संतान नहीं है। ज्ञांति और उनके पति कंचन मांझी का जीवन बहुत कठिन है और उन्हें एक समय के भोजन के लिए भी बहुत मेहनत करनी पड़ती है। कचरा चुनकर जो बोतल मिलते हैं उससे मुश्किल से 100 रुपए आ पाते हैं। इसके अलावा उनके पति को नशे की लत है। मार–पीट और गाली–गलौज उनके जीवन का हिस्सा था। ज्ञांति को अपने जीवन में सुधार की कोई उम्मीद नहीं थी। तभी उन्हें नगर निगम की इस मुहिम के बारे में पता चला। ज्ञांति भी प्रशिक्षण में शामिल हो गईं और धीरे–धीरे हर काम में पारंगत हो गईं। कभी उनके पास न तो पहनने के लिए ढंग के कपड़े थे और न ही भोजन। लेकिन आज उनके पास ये दोनों ही चीजें हैं।

अनीता देवी

पटना के चीना कोठी में रहने वाली अनीता देवी 24 साल की हैं और पिछले साल तक अत्यंत गरीबी का जीवन जी रही थीं। उनके पति हॉस्टल में स्वीपर का काम करते हैं। अनीता के तीन बच्चे हैं लेकिन वो उनका दाखिला स्कूल में कराने में असमर्थ थीं। अनीता के घर में बिजली नहीं है। 2016 में जब वे अपने घर में रोशनी करने के लिए मोमबत्ती जला रही थीं, तभी उनके नवजात शिशु ने उस मामबत्ती को पकड़ लिया जिसमें उसके हाथ की अंगुली पूरी तरह जल गई। लेकिन पैसे न होने के कारण वो उसका इलाज नहीं करा पाईं। पिछले साल उन्हें स्वच्छांगिनी कार्यक्रम के बारे में पता चला। वे मेनहोल की सफाई करने वाली मशीन और गाड़ी को चलाना सीख गईं। अब उन्होंने बच्चों का दाखिला स्कूल में करा लिया है और बेटे का इलाज करवा सकेंगी।

नीलम देवी

दीघा मुसहरी में स्वच्छांगिनी की टीम के पहुंचने से पहले तक 25 साल की नीलम देवी का जीवन किसी यातना से कम नहीं था। कचरा चुनने वाली नीलम के दो बच्चे हैं। लेकिन दोनो ही स्कूल नहीं जाते थे, क्योंकि नीलम के पास उनकी पढ़ाई तो क्या, उनके भोजन के लिए भी पैसे नहीं थे। कचरा चुनकर मुश्किल से उसे रोज के 60–70 रुपए मिलते थे। नीलम का पति कोई काम नहीं करता है। पिछले साल जब नीलम की बस्ती में पटना नगर निगम और यूएनएफपीए की टीम पहुंची तो उसे स्वच्छांगिनी और उसके तहत दिए जाने वाले प्रशिक्षण के बारे में पता चला। नीलम ने बिना देरी किए प्रशिक्षण का हिस्सा बनने का फैसला किया। अब नीलम के पास अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ाने और अपने कर्जों को चुकाने का भी रास्ता मौजूद है।

सफाईकर्मियों को हो अधिकारों की जानकारी

बगैर जीवन रक्षक उपकरण दिए कर्मचारियों से नालों की सफाई कराने के मामले में इलाहाबाद हाईकोर्ट ने उत्तर प्रदेश सरकार से कहा है कि वह ऐसे कर्मचारियों को शिक्षित कर उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करे। कोर्ट ने सरकार को निर्देश दिया है कि वह पम्फलेट छपवाकर सफाई कर्मचारियों को बांटे, जिसमें उनको मिलने वाली योजनाओं और लाभों की जानकारी दी गई हो। कोर्ट ने कहा कि जब तक सफाई कर्मचारियों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक नहीं किया जाएगा, तब तक उन्हें क्या पता उन्हें क्या–क्या हक मिले हैं। कोर्ट ने कहा कि ऐसे कर्मचारी शिक्षित नहीं है तो उन्हें शिक्षित किए बिना सरकार की ओर से बनाई गई स्टैंडर्ड ऑपरेटिंग प्रोसिजर (एसओपी) और अन्य लाभकारी योजनाओं का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। कोर्ट ने ऐसे कर्मचारियों के लिए बनाई गई योजनाओं को नोटिस बोर्ड पर चस्पा करने, उसका जनसंचार व अन्य माध्यमों के जरिये व्यापक रूप से प्रचारित करने को कहा है।

इसमें कोई शक नहीं कि सफाईकर्मी हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। अपनी जिंदगी को दांव पर लगाकर केवल कुछ पैसों के लिए ये कर्मचारी दिन–रात काम करते हैं लेकिन बदले में उन्हें जो सुविधाएं मिलती हैं वे ऊंट के मुंह में जीरा के समान हैं।

संबंधित योजनाएँ

अत्याचार निवारण अधिनियम : वर्ष 1989 में अत्याचार निवारण अधिनियम, स्वच्छता कार्यकर्त्ताओं के लिये एक एकीकृत उपाय बन गया, क्योंकि मैला ढोने वालों में से 90 प्रतिशत से अधिक लोग अनुसूचित जाति के थे। वर्तमान में यह मैला ढोने वालों को निर्दिष्ट पारंपरिक व्यवसायों से मुक्त करने के लिये एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर बन गया है।

सफाई मित्र सुरक्षा चुनौती : इसे आवास एवं शहरी मामलों के मंत्रालय द्वारा वर्ष 2020 में विश्व शौचालय दिवस (19 नवंबर) पर लॉन्च किया गया था। सरकार ने सभी राज्यों से अप्रैल 2021 तक सीवर–सफाई को मशीनीकृत करने हेतु इस 'चुनौती' का शुभारंभ किया है, इसके तहत यदि किसी व्यक्ति को अपरिहार्य आपात स्थिति में सीवर लाइन में प्रवेश करने की आवश्यकता होती है, तो उसे उचित गियर और ऑक्सीजन टैंक आदि प्रदान किये जाते हैं।

स्वच्छता अभियान एप : इसे अस्वच्छ शौचालयों और हाथ से मैला ढोने वालों के डेटा की पहचान और जियोटैग करने के लिये विकसित किया गया है, ताकि अस्वच्छ शौचालयों को सेनेटरी शौचालयों से प्रतिस्थापित किया जा सके तथा हाथ से मैला ढोने वालों को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करने के लिये उनका पुनर्वास किया जा सके।

राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त और विकास निगम : यह सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तहत एक गैर–लाभकारी कंपनी है। इसका प्राथमिक उद्देश्य सफाई कर्मचारियों और उनके आश्रितों का सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उत्थान करना है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय : वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय के एक आदेश ने सरकार के लिये उन सभी लोगों की पहचान करना अनिवार्य कर दिया, जो वर्ष 1993 से सीवेज के कार्य में मारे गए तथा उनके परिवारों को मुआवज़े के रूप में प्रत्येक को 10 लाख रुपए प्रदान किये गए। वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक आदेश के माध्यम से सरकार को यह निर्देश दिया था कि वह वर्ष 1993 के बाद से मैनुअल स्कैवेंजिंग कार्य करने के दौरान मरने वाले सभी लोगों की पहचान करे और उनके परिवार को 10 लाख रुपए का मुआवज़ा प्रदान करे।

हाथ से मैला उठाने वालों के नियोजन का निषेध और उनका पुनर्वास अधिनियम, 2013

यह अधिनियम हाथ से मैला ढोने वालों के नियोजन, बिना सुरक्षा उपकरणों के सीवर व सेप्टिक टैंकों की हाथ से सफाई और अस्वच्छ शौचालयों के निर्माण पर रोक लगाता है। किसी भी व्यक्ति, स्थानीय प्राधिकरण या एजेंसी (जैसे नगर निगम) को सीवर और सेप्टिक टैंक की सफाई के लिये लोगों को नियुक्त या नियोजित नहीं करना चाहिये। सेप्टिक टैंकों की यंत्रीकृत सफाई एक निर्धारित मानदंड है। यह मैनुअल मैला ढोने वालों का पुनर्वास करने और उनके वैकल्पिक रोज़गार प्रदान करने का प्रयास करता है। प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण, छावनी बोर्ड और रेलवे प्राधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर अस्वच्छ शौचालयों के सर्वेक्षण के लिये ज़िम्मेदार हैं तथा वे कई स्वच्छता सामुदायिक शौचालयों का भी निर्माण करेंगे। अस्वच्छ शौचालयों का प्रत्येक अधिभोगी अपने स्वयं के खर्च पर शौचालय को परिवर्तित या ध्वस्त करने के लिये ज़िम्मेदार होगा।

रंग लाई मेहनत

बूंद–बूंद से सागर भर रहीं 'जीविका दीदीयां'

मुसहर जाति के एक रिक्शा खींचने वाले शख्स की विधवा अमोला देवी पिछले साल 1 करोड़ रुपए का वित्तीय लेन–देन करने में सफल हो पाई हैं। उनके परिवर्तन की कुंजी भारत का सबसे बड़ा स्वयं सहायता समूह है, जिनकी 8.2 मिलियन महिलाओं ने 64 मिलियन डॉलर की बचत की है, औपचारिक क्रेडिट में 500 मिलियन डॉलर उधार लिया है और मधुमक्खी रखने से लेकर उच्च मूल्य वाले कृषि तक के 2,70,000 व्यवसाय शुरू किया है।

गया की अमोला देवी कभी स्कूल में नहीं गई थी। कभी भी बैंक को अंदर से नहीं देखा था। वह मुसहर यानी चूहे–पकड़ने वाली जाति से हैं। मुसहर एक दलित जाति है और इनकी संख्या बहुत कम है। ये लोग इस कदर हाशिए पर हैं कि बिहार सरकार भी इन्हें एक विशेष श्रेणी में रखती है, जिसे महादलित कहा जाता है। दस साल पहले बिहार के दक्षिणी जिले के जिंदापुर गांव में, उसके आठ साल के दो बच्चे बीमार हो गए थे। चिकित्सा का खर्च वहन न कर सकने के कारण उसके दोनों बच्चों की मौत हो गई। किसी समय में उनके पति रिक्शा चलाने का काम करते थे और 200 रुपए कमाते थे, जिसमें से 100 रुपए रिक्शा मालिक को चला जाता था। बाकी के बचे पैसों में उसे अपने बच्चों को खिलाना होता था और परिवार की देखभाल करनी होती थी। उसके बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। जब वह गांव के कुएं से पानी निकालने जाती थी तो उसे दूसरों के पानी भरने तक का इंतजार करना पड़ता था, ताकि उसके बाल्टी के संपर्क में आने से लोग भी अछूत या प्रदूषित न हो जाएं। अब वर्ष 2016 में अमोला देवी 1 करोड़ रुपए का वित्तीय लेन–देन करने में सफल रही हैं। बिहार की लाखों गरीब महिलाओं की तरह अमोला देवी भी, जीविका नाम की एक राज्यव्यापी कार्यक्रम की लाभार्थी है। यह कार्यक्रम विश्व बैंक, राज्य सरकार और राष्ट्रीय सरकार द्वारा सह–वित्तपोषित है।

'जीविका' कार्यक्रम में स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) में 8.2 मिलियन से अधिक ग्रामीण महिलाओं को शामिल किया गया है। प्रत्येक हफ्ते, हर दिन 10 रुपए निवारक करने के अलावा, इन महिलाओं ने सामूहिक रूप से 64 मिलियन डॉलर (418.5 करोड़ रुपए) की बचत की है और बैंकों से 500 मिलियन डॉलर (3,270

रंग लाई मेहनत

करोड़ रुपये) का ऋण लिया है। इस कार्यक्रम में अब तक, छोटे व्यवसायों में 600,000 महिला किसान, डेयरी और मुर्गी उत्पादकों और उद्यमियों की शुरूआत हुई है। ये महिलाएं राज्य भर में एक राजनीतिक और सामाजिक शक्ति के रूप में उभर रही हैं।

जीविका एसएचजी महिला सदस्यों की एक बैठक में मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने वादा किया था कि यदि वे सत्ता में आते हैं तो शराब पर पाबंदी लगाएंगे। करीब 20 एसएचजी की ग्राम परिषद, उजाला ग्राम संगठन की अध्यक्ष सरोज देवी कहती हैं, ''पुरुष दिन में शराब पीएंगे और नशे में दुर्व्यवहार करेंगे। अब हम उन्हें बताते हैं, अगर आप शराब पीना चाहते हैं, तो जेल में खिचड़ी खाने के लिए तैयार रहें।'' वह बताती हैं, वर्ष 2012 में, जब पुलिस ने हत्या के मामले में घसीटा तो, सरोज देवी सहित, जीविका की महिला सद्स्यों ने पुलिस थाने का घेराव किया, फाटकों को तोड़ दिया और आग्रह किया कि गिरफ्तारियां कराई जाए। वर्ष 2016 में, उन्होंने स्थानीय पंचायत चुनावों में चुनाव लड़ा और 288 वोटों से चुनाव जीता।

बिहार में भारत की सबसे खराब महिला श्रम शक्ति भागीदारी है, फिर भी, महिलाएं हर जगह दिखाई देती हैं– सड़कों पर, खेतों में, स्कूल तक साइकिल चलाने या बाजारों और हाटों पर छोटे स्टॉल चलाती हुई वे दिख जाती हैं। एक दशक के दौरान साक्षरता में 10 प्रतिशत अंक से ज्यादा की वृद्धि हुई है, 18 वर्ष से कम उम्र में शादी करने वाली महिलाओं के अनुपात में गिरावट हुई है और अब पहले से अधिक महिलाओं के पास बैंक खाते हैं, जिसका इस्तेमाल वे स्वयं करती हैं। इसका श्रेय जीविका को दिया जा सकता है। 2007 में बिहार के गरीब जिलों में से छह में ग्रामीण घरों की महिलाओं को लक्ष्य बनाते हुए तीन उद्देश्यों के साथ 'जीविका' शुरू हुई थी। इन उद्देश्यों में पहला ग्रामीण परिवारों का सामाजिक सशक्तिकरण था, उसके बाद आर्थिक सशक्तिकरण और फिर गरीबी कम करना था। यह कार्यक्रम अब बिहार के 38 जिलों और 534 ब्लॉकों में चलाया जा रहा है।

जीविका की संरचना में जिंदगी की रेखा में नीचे से ऊपर की ओर जाने की सोच है। 10–15 महिलाएं एसएचजी के रूप में ब्याज पर ऋण लेने और बैंकों से क्रेडिट प्राप्त करने के लिए एकत्रित होती हैं। उनका केंद्र आर्थिक गतिविधि के आसपास होता है, और वे अपने निर्माता संगठन भी बनाते हैं, जैसे कि शहद उत्पादन या छात्रों के लिए कम लागत वाले सौर उर्जा वाले लैंप बनाना। इन एसएचजी में से बीस से 30 ग्राम संगठन बनते हैं, जबकि 25 से 35 गांव संगठन एसएचजी क्लस्टरों के एक संघ के रूप में एक साथ मिलते हैं। अमोला देवी एक ऐसे संघ की अध्यक्ष है जिसे 'एकता संकुल संघ' कहा जाता है, जिसमें चार ग्राम पंचायतों के 7,000 सदस्य हैं। इस फेडरेशन के लिए अकेले ब्याज से आय करीब 100,000 रुपए प्रति माह है। जब महिलाएं ऋण वापस करती हैं, ब्याज सभी स्तरों पर वितरित किया जाता है, ताकि

बिहार में गया जिले के सहदेवखाप गांव में संयंत्र में काम करतीं महिलाएं।
फोटो: इंडियास्पेंड

गांव और क्लस्टर ग्रुपिंग को एक शेयर मिले। साप्ताहिक बैठक अनिवार्य हैं, और रिकॉर्ड बनाए रखा जाना चाहिए। यह महिलाएं स्वच्छता से सामाजिक मुद्दों तक पर चर्चा के लिए यहां मिलती हैं। 2 अक्तूबर, 2017 को, उन्होंने दहेज प्रथा को खत्म करने का वचन दिया। 'जीविका' की राज्य प्रोजेक्ट मैनेजर, अर्चना तिवारी कहती हैं, ''बिहार में महिलाओं की ऊर्जा को सीमित करने की संस्कृति है। यहां तक कि गांवों में, महिलाएं अपने घरों और इसकी परिधि तक ही सीमित थीं। पुरुष शकी थे, वे जानना चाहते थे कि हम महिलाओं को क्या सिखा रहे थे।'' शुरुआती दिनों में शामिल हुई कई महिलाओं ने अपने पतियों को इस संबंध में नहीं बताया था या फिर उनके प्रतिरोध का सामना किया था। 2009 में जब फुलवा देवी शामिल हुई थी, तब उनकी सास ने उन्हें ताना मारते हुए पूछा था कि क्या वह पूरा दिन गांव की गलियों में घूमते हुए बिताएंगी। लेकिन जब फुलवा देवी ने अपने पति के लिए हार्डवेयर की दुकान स्थापित करने के लिए 100,000 रुपए का ऋण लिया, तो उन्हें पता चला कि उसने क्या किया था।

साभार : indiaspendhindi.com

बनीं सहारा

कोरोना में संकटमोचक की भूमिका निभाई

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत जीविका संगठनों ने ना केवल आत्मनिर्भरता की मिसाल पेश की है बल्कि इस संकट काल में गरीब और साधनहीन लोगों की मदद भी की है। मास्क बनाने से लेकर गरीबों के बीच मुफ्त अनाज बांटना हो या फिर अस्पतालों में रसोई चलाना हो, जीविका संगठनों ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया है।

'दीदी की रसोई' पहुंचा रही मरीजों को खाना

इस योजना के अंतर्गत बिहार के सरकारी अस्पतालों में मरीज, उनके परिजन और समस्त स्टाफ को न्यूनतम दर पर भोजन उपलब्ध करवाया जाता है। इसमें काम करने वाली दीदीयां थोड़े से प्रशिक्षण के बाद अपने हुनर से लोगों की सेवा कर रही हैं। भोजन बनाते वक्त खाने की पौष्टिकता, गुणवत्ता और स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता है। कोरोना के इस संकट के दौर में जीविका संगठन ने बहुआयामी कार्य किये हैं, जैसे कि मास्क बनाना, गरीबों की मदद के लिए घर–घर से एक मुट्ठी अनाज एकत्रित करना, संकट की घड़ी में जीविका दीदीयों के कई संगठनों ने प्रवासी लोगों को मुफ्त में खाना खिलाया, और अब "दीदी की रसोई" के जरिये मरीजों और उनके परिजनों की मदद कर रही हैं। बिहार सरकार की "दीदी की रसोई" योजना के अंतर्गत राज्य के सरकारी अस्पतालों की कैंटीन में जीविका दीदीयों के द्वारा खाना बना कर उपलब्ध करवया जायेगा। इस योजना के द्वारा अस्पताल में भर्ती मरीजों, उनके परिजनों एवं अस्पताल के स्टाफ को उच्च गुणवत्ता का खाना न्यूनतम दाम पर उपलब्ध करवाया जायेगा। यह योजना बिहार के सभी 38 जिलों में लागू की गयी है।

इस योजना के द्वारा मरीजों को अस्पताल में भी घर जैसा शुद्ध और सात्विक भोजन उपलब्ध करवाया जाता है जो मरीजों की सेहत के लिए तो लाभदायक है ही साथ ही उनका आर्थिक बोझ भी कम किया जा सकता है। इस योजना के अंतर्गत मरीज को मिलने वाली थाली की कीमत मात्र 150 रुपये प्रति थाली है। पहले इस थाली का मूल्य 100 रुपये प्रति थाली था। इस योजना से मिलने वाले भोजन से अस्पतालों के मरीज एवं उनके परिजन बहुत ही खुश हैं कि उन्हें अब अच्छे भोजन की तलाश में भटकना नहीं पड़ता है और उन्हें घर जैसा खाना अस्पताल में ही मुहैया करवाया जा रहा है। इस योजना का दूसरा पहलू यह भी है कि इस योजना से जुड़े समस्त जीविका संगठनों की सभी महिला सदस्यों को रोजगार प्राप्त हो सके और वे आत्मनिर्भर बन सकें।

बनीं सहारा

9 लाख से ज्यादा मास्क बनाए

इतना ही नहीं, कोरोना के संक्रमण से लोगों को बचाने के लिए जीविका की महिलाएं अब तक 9 लाख से ज्यादा मास्क बना चुकी हैं। जीविका से जुड़े एक अधिकारी ने बताया कि बिहार रूरल लाइवलिहुड प्रोजेक्ट (जीविका) के तहत महिलाओं द्वारा राज्य के सभी जिलों में मास्क तैयार करवाया जा रहा है। जीविका की अधिकारी ने एक कार्यक्रम में कहा कि स्वयं सहायता समूहों ने कुछ ही दिनों में 9 लाख से अधिक मास्क बना दिए, जिसे उचित मूल्य पर बेचने के लिए बाजार में भेजा गया। राज्य की 1276 समूहों द्वारा यह काम किया गया है। उन्होंने कहा, हमलोगों का प्रयास था कि बिना मास्क के घर से कोई बाहर नहीं निकले। इसके अलावा, मास्क निर्माण के काम को शुरू करने से लॉकडाउन में बेरोजगार बैठे जीविका समूह के लिए स्वरोजगार का एक माध्यम मिल गया। उनके लिए आय का साधन भी मिल गया। सबसे गौरतलब बात है कि निर्माण स्थलों पर सोशल डिस्टेंसिंग और स्वच्छता का भी पूरा ख्याल रखा गया था क्योंकि सवाल उनकी सुरक्षा का भी था। मास्क की बढ़िया गुणवत्ता को देखकर साउथ बिहार पावर डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी के कर्मियों ने भी यहां के मास्क खरीदे। बैंक और कई स्वयंसेवी संस्थान भी यहां के मास्क खरीदकर उपयोग कर रहे हैं।

प्रवासी परिवारों को राशन कार्ड, ऋण दिलवाया

कोरोना काल में मुख्यमंत्री ने जीविका दीदीयों को कई तरह की नयी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी, जैसे ग्रामीण परिवेश में रोज़गार पैदा करना, ऋण उपलब्ध कराना, प्रवासी परिवारों को राशनकार्ड

उपलब्ध कराना, लोगों को घरेलू उद्योग से जोड़ना तथा स्थानीय स्तर पर मास्क बनवाकर रोज़गार के नए अवसर पैदा कराना। लॉकडाउन की अवधि में जब सब घरों में कैद थे, जीविका दीदीयों ने तय किया कि पंचायत के किसी भी परिवार के सामने रोजी–रोटी की समस्या नहीं आनी चाहिए। 'अभियान ग्राम संगठन' ने यह ठाना की कोरोना महामारी के समय अपने संगठन के अलावा सरकार का भी साथ देंगे। पूर्ण लॉकडाउन के दौरान जब लोगों के सामने खाने की बड़ी समस्या खडी हो गयी, 'विश्वकर्मा जीविका ग्राम संगठन' की दीदीयों ने ऐसे परिवारों को ऋण उपलब्ध कराया जो प्रतिदिन दिहाड़ी करते हैं। उन्हें मनरेगा के अंतर्गत काम भी दिलाया, कुछ परिवारों को ठेला उपलब्ध कराया, जिन्होंने फिर सब्जी, फल बेचने का काम शुरू किया।

अब टीकाकरण के लिए कर रहीं जागरूक

अब जबकि कोरोना महामारी अपने अंतिम दौर में है, तो टीकाकरण की भूमिका और महत्वपूर्ण हो गई है। समुदाय के लोगों को जागरूक करने व उनका टीकाकरण सुनिश्चित कराने में जीविका दीदीयों का प्रयास सराहनीय रहा है। पहले, दूसरे व बूस्टर डोज के टीकाकरण से वंचित लोगों को टीका दिलवाने में जीविका महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। एक अधिकारी ने बताया कि जीविका द्वारा संचालित अभियान के क्रम में स्वास्थ्य विभाग के सहयोग से बुजुर्ग, दिव्यांग, बीमार व्यक्तियों से संबंधित सूची जीविकाकर्मी व कैडर स्वास्थ्य विभाग के साथ साझा करेंगे ताकि घर पर ही उनके टीकाकरण का इंतजाम सुनिश्चित कराया जा सके। इतना ही नहीं अगर टीकाकरण स्थल बस्ती से दूर है, लोग उस जगह जाने को तैयार नहीं हैं, तो जीविकाकर्मी स्वास्थ्य विभाग से समन्वय स्थापित करते हुए टीकाकरण वैन की मदद से वंचितों को टीकाकृत कराने का प्रयास करेंगी।

ऑर्केस्ट्रा बैंड में जिंदगी

पिंजरे में बंद नाचतीं लड़कियां

रिकार्डिंग रूम छोटा है। कुछ महिलाएं इंतज़ार में खड़ी हैं। उन्हें अपनी कहानियां रिकॉर्ड करानी हैं। उन्हें बताया गया कि यह उनके लिए मददगार साबित हो सकती है। कोई उनकी कहानियों को पढ़ या सुन कर उन्हें बचाने के लिए आगे आ सकता है। बीबीसी. कॉम/हिन्दी से साभार ली गई एक रिपोर्ट–

उम्र के तीसरे दशक के आखिर में चल रही एक महिला इन लड़कियों का परिचय कराती है। ये लड़कियां बिहार के कुछ इलाक़ों की शादियों या पार्टियों में बुलाए जाने वाले ख़ास तरह के ऑर्केस्ट्रा बैंड में नाचती–गाती हैं। लेकिन इस दौरान अक्सर उनके साथ ज्यादतियां होती हैं। शादियों में होने वाले जश्न के नाम पर फ़ायरिंग तो आम है। ऐसी फ़ायरिंग में इन लड़कियों के मारे जाने की ख़बरें आती रहती हैं। 24 जून को नालंदा में ऐसे ही एक शादी समारोह में फ़ायरिंग में स्वाति नाम की लड़की की मौत हो गई। इस हादसे में एक पुरुष डांसर को भी गोली लगी।

पति की प्रताड़ना से लेकर पिंजरे तक

ऑर्केस्ट्रा बैंड में गाने वाली रेखा वर्मा कहती हैं कि कुछ को तो देह के धंधे में उतरना पड़ा है। रेखा राष्ट्रीय कलाकार महासंघ की अध्यक्ष हैं। ऑर्केस्ट्रा में काम करने वाले ऐसे ही पुरुष और महिला कलाकारों के हक़ की लड़ाई के लिए 2018 में उन्होंने यह संगठन बनाया था। इन्हीं महिलाओं में से एक अपनी आपबीती सुनाते सिसक पड़ती हैं। आंसुओं से उनका चेहरा भीग गया है और मस्कारा लुढ़क कर गालों तक उतर आया है। इनके बाल भूरे रंग में, नीले रंग का लाइक्रा कुर्ता और सलमे–सितारे वाली सलवार पहनी इस महिला के हाथ में गोल्डन पर्स है। आंखें बड़ी हैं और बाएं हाथ में तितली का टैटू बना है। नाम दिव्या है लेकिन यह असली नहीं है। इनका कहना है कि उन्हें दिवंगत अभिनेत्री दिव्या भारती बहुत अच्छी लगती थीं। वह उन्हीं की तरह बनना चाहती थीं। इसलिए अपना नाम दिव्या रख लिया है। लेकिन नाम बदले जाने से ज़िंदगी तो आसान नहीं होती है। दिव्या प्रदर्शन के लिए घेर कर बनाई गई जगह या स्टेज पर डांस करती हैं। उन्हें शराब के नशे में धुत्त पुरुषों के बीच नाचना पड़ता है। दिव्या ऑर्केस्ट्रा कही जाने वाली मंडली का हिस्सा हैं। दिव्या बिहार के पूर्णिया में पैदा हुई थीं। वह जब किशोरी थीं, तो उनका परिवार काम की तलाश में पंजाब चला गया था। 13 साल की उम्र में ही उनकी शादी कर दी गई। पति ड्राइवर था, जो अक्सर मार–पीट और गाली–गलौज करता था। एक दिन पति ने जब घर से निकाल

फोटो: www.bbc.com/hindi

दिया तो बेटियों को लेकर उन्होंने पटना के लिए ट्रेन पकड़ी। बाद में, एक ऑनलाइन मुलाक़ात में एक शख्स ने उन्हें एक शूटिंग का काम दिलाने का भरोसा दिलाया था। उस शख्स ने दिव्या को अपनी गर्लफ्रेंड के साथ मीठापुर के एक फ़्लैट में रखवा दिया और कहा कि वह स्टेज शो में डांस करके पैसा कमा सकती हैं। दिव्या कहती हैं, ''17 साल तक मैं पति के हाथों प्रताड़ित होती रही।'' आखिरकार, दिव्या ने इस साल फरवरी में 'डांसलाइन' ज्वाइन कर ली। उनकी उम्र 28 साल है और वह जानती हैं कि यह वह जगह नहीं है, जहां पहुंचने की उन्होंने तमन्ना की थी। लेकिन महामारी और उनकी अपनी परिस्थितियों ने उन्हें मजबूर कर दिया।

दिव्या रो पड़ती हैं। वह कहती हैं, ''कोई इज्ज्त नहीं है। मैं कुछ और बनना चाहती थी, लेकिन यहां पहुंच गई और अब फंस गई हूं। आपको पता है मुझे किस चीज़ से ज्यादा नफ़रत है? मुझे पिंजरे में डांस करना पड़ता है। इसे जुलूस की शक्ल में पूरे गांव में घुमाया जाता है। लोग गिद्धों की तरह हम पर झपटते हैं। हमारा वीडियो बनाते हैं। हम पर ताने कसते हैं। गालियां देते हैं।'' जून महीने की एक रात चमचमाती ड्रेस पहने तीन लड़कियां ऐसे ही एक पिंजरे में डांस कर रही थीं। कुछ पुरुष इन्हें घेर कर

अपने–अपने मोबाइल पर वीडियो बनाने में लगे थे। ट्रॉली अपने पहिये पर सरकती विवाह स्थल की ओर जा रही थी। पूर्व फोटो जर्नलिस्ट नीरज प्रियदर्शी कोइलवर (बिहार) में अपने घर से इस जुलूस को देख रहे थे। इस पूरे माहौल को उन्होंने अपने ट्विटर अकाउंट से शेयर कर दिया। देखते–देखते वीडियो वायरल हो गया। कइयों ने इस दृश्य को देखकर इसे शादियों और पार्टियों में डांस करने वाली डांसर महिलाओं की गरिमा पर हमला क़रार दिया। नीरज कहते हैं, ''आप जानवरों से भी इस तरह का बर्ताव नहीं करते हैं। मैंने ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा था।'' लड़कियों के लिए इस तरह का पिंजरा कई साल पहले सामने आया। ऐसे समारोहों में डांस करने वाली लड़कियों के खिलाफ बढ़ती हिंसा को देखते हुए यह 'इनोवेशन' किया गया था। पिंजरा इस पेशे में आई गिरावट, अराजकता और शोषण की निशानी है।

ग़रीबी की मार से बचने के लिए 'डांसलाइन' का रास्ता

आकांक्षा की बहन को एक रात ऐसे ही एक डांस प्रोग्राम में गोली लग गई। वह बच गईं और ख़तरे से बाहर हैं। लेकिन इस घटना ने आकांक्षा को अंदर से हिला दिया है। ऑर्केस्ट्रा के मालिक मनीष दावा करते हैं कि उन्होंने एफ़आईआर दर्ज कराने की को. शिश की लेकिन स्थानीय पुलिस ने केस रजिस्टर नहीं किया। अपने घर पर डांस कराने के लिए इन महिलाओं से कॉन्ट्रेक्ट करने वाले राहुल सिंह ने बताया कि यह इन कलाकारों की बड़ी समस्या है। उनकी कोई सुनता ही नहीं। उन्हें सीधे ख़ारिज कर दिया जाता है। आकांक्षा और उनकी बहन पिछले तीन साल से बिहार में 'ऑर्केस्ट्रा बैंड' कहे जाने वाले एक ग्रुप से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने सुन रखा था कि ऐसे डांस प्रोग्राम में लड़कियों को गोली मारी गई है। आकांक्षा कहती हैं, ''हमने यह भी सुन रखा था कि कभी–कभी तो बंदूक़ की नोंक पर उनसे बलात्कार भी हो जाता है।'' लेकिन इन बहनों के सामने कोई चारा नहीं था। उनके सारे विकल्प वर्षों पहले तब ख़त्म हो गए थे, जब उनके पिता की मौत हो गई थी। दोनों बहनें ग्वालियर की हैं। मां लोगों के घरों में काम करती हैं। परिवार के पास आय का कोई दूसरा स्रोत नहीं था लिहाज़ा स्कूल की फीस कहां से देते। मजबूरी में पढ़ाई छोड़नी पड़ी। आकांक्षा ने पड़ोस के डांस स्कूल में कंटेम्परारी डांस सिखाना शुरू किया। कभी–कभी किसी समारोह में डांस करने के पैसे भी मिल जाते थे। डांस स्कूल चलाने वाले शख्स ने उन्हें कोमल नाम की महिला से मिलवाया। उस महिला ने उन्हें अच्छा मौका और पैसा दिलाने का वादा किया। आकांक्षा अपनी मां के लिए एक घर बनाना चाहती थीं। अमीरों के घर की तरह, जिनमें फ़र्श पर टाइल्स लगी होती हैं। उस दौरान वे झोपड़ी में रहते थे। घर का सपना लिए आकांक्षा कोमल पर भरोसा कर बिहार आ गई जहां दोनों बहनों को पावापुरी में एक कमरे में रखवा दिया गया और कोमल ने कहा कि उन्हें डांस करना होगा और कमा कर देना होगा। कोमल बेहद ज़रूरी होने पर ही उन्हें कमरे से बाहर जाने देती थीं। आकांक्षा ने अपनी बहन से कहा कि शायद वे ग़लत जगह आ गई हैं। दोनों बहनें पैसा कमाना चाहती थीं लेकिन लगातार घंटों डांस करने के बाद भी उन्हें एक दिन में सिर्फ़ 1700 रुपये मिलते थे। फिर भी उन्हें सब कुछ ठीक होने की उम्मीद थी कि इसी बीच आकांक्षा की बहन स्वाति को गोली लग गई।

दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर मुन्ना कुमार पांडे कहते हैं, ''पूंजीवादी माहौल में नई टेक्नोलॉजी के आने और फिर इसके बाद कोरोना के क़हर की वजह से ऑर्केस्ट्रा बैंड में काम करने वाली महिलाओं की हालत दयनीय हो गई है।'' वह कहते हैं, ''पहले भी शोषण था लेकिन बाद में ऐसा लगा कि महिलाएं कला के सहारे ताक़तवर बन कर उभरेंगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इन महिलाओं को समझौता करने पर मजबूर किया गया. यह डरावनी बात है।''

ज्यादातर डांसर मानव तस्करी की शिकार

इन ऑर्केस्ट्रा बैंड में काम करने वाली ज्यादातर लड़कियां मानव तस्करी की शिकार हैं। ये देश के अलग–अलग राज्यों और बिहार से सटे नेपाल तक से लाई जाती हैं। पिछले साल 10 दिसंबर में रक्सौल में ऑर्केस्ट्रा में काम करने वाली ऐसी ही एक लड़की को गोली मार दी गई थी। 23 सितंबर, 2020 को समस्तीपुर में एक युवक ने एक डांसर को गोली मार दी थी। इनमें से ज्यादातर घटनाएं सुर्खियां नहीं बन पाती हैं। पुलिस कभी–कभार ही कोई केस दर्ज करती है क्योंकि एक तो ऐसे मामले में जल्दी कोई सबूत या गवाह नहीं मिलता। दूसरे, इन महिलाओं को कलंकित समझा जाता है और समाज में इनके बारे में ख़राब धारणाएं हैं। ये महिलाएं ढके–छिपे तौर पर ही रहती हैं। इन महिलाओं को समाज का बिल्कुल साथ नहीं मिलता लिहाज़ा इनका भी तमाम संस्थाओं से विश्वास उठ गया है। राष्ट्रीय कलाकार महासंघ के संस्थापक अख़लाक़ ख़ान कहते हैं, ''समस्या गरिमा की है। बिहार में ऑर्केस्ट्रा बैंड इसलिए ज्यादा पनप रहे हैं क्योंकि वे ग़ैरकानूनी काम करते हैं। ऐसे बैंड अपना रजिस्ट्रेशन भी नहीं कराते।

ऐप एक काम अनेक
पटना शहर को साफ स्वच्छ बनाने के लिए
'क्लीन पटना ऐप' डाऊनलोड करें
GET IT ON Google Play
Clean Patna App डाऊनलोड करे
CITIZEN GRIEVANCE APP
Welcome to Patna Smart City
Raise Complaint
Complaint Status
Track Vehicles
View Bills
Toll Free
Near Me
Responsible Person
Sos
अपनी शिकायत का स्टेटस जानें
शिकायत दर्ज करें
गाड़ी को ट्रैक करें
बिल देखें
हेल्पलाइन नंबर
155304
स्वच्छ पटना शहर अपना
कुछ हम करें, कुछ आप करें
पटना नगरपालिका
CITY OF PATNA
पटना नगर निगम द्वारा जनहित में जारी

अपने शहर को रखें साफ
पटना नगरपालिका
CITY OF PATNA
हेल्पलाइन नंबर 155304
पटना नगर निगम द्वारा जनहित में जारी
SWACHH SURVEKSHAN 2022
कुछ हम करें, कुछ आप करें
स्वच्छ पटना शहर अपना

हौसले को सलाम

जहां नहीं पहुंच पातीं मुख्यधारा की मीडिया, वहां खड़ी है खबर लहरिया

बुंदेलखंड के गांव–जवार की महिलाएं बनीं पत्रकार

'खबर लहरिया' केवल महिलाओं के द्वारा चलाया जाने वाला देश का इकलौता अखबर है। इसकी शुरुआत साल 2002 में उत्तर प्रदेश के चित्रकुट में निरंतर एनजीओ ने मीरा जाटव, शालिनी जोशी और कविका बुंदेलखंडी के साथ मिलकर की थी। जब इस अखबार की शुरुआत हुई, उस वक्त इसमें काम करने वाली महिला पत्रकार और रिपोर्टर्स खुद अपने हाथ से खबरों को एक पन्ने पर लिखती थीं। दो पन्नों के इस मासिक अखबार को रिपोर्टर्स पैदल सुदूर ग्रामीण इलाकों में पहुंचाया करती थीं। पाठक बढ़ने पर इसकी छपाई शुरू की गई। धीरे–धीरे यह अखबार चित्रकुट के अलावा यूपी और एमपी में बुंदेलखंड के अन्य जिलों तक भी पहुंचने लगा।

'खबर लहरिया' को सबसे खास बनाती है उसकी महिला पत्रकारों की टीम। इस टीम में ग्रामीण पृष्ठभूमि की दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाएं शामिल हैं। इनमें कई महिलाएं ऐसी हैं, जिन्होंने या तो 5–7वीं तक की पढ़ाई की है या फिर पढ़ी ही नहीं हैं। इन महिला पत्रकारों ने बुंदेलखंड के इस समाचार पत्र को नई बुलंदियों तक पहुंचाया है। खबरों को बताने के लिए स्थानीय बोली का इस्तेमाल करने की वजह से बुंदेलखंड इलाके में यह काफी लोकप्रिय है। खबर लहरिया स्थानीय स्तर के जनसरोकार के मुद्दों को हमेशा प्राथमिकता देती है। चाहे महिलाओं के खिलाफ ग्रामीण और सुदूर इलाकों में अपराध हों, गांवों में विकास की अनदेखी हो या फिर पर्यावरण को लेकर प्रशासन की लापरवाही, ऐसी खबरें जिन्हें आम तौर पर मुख्यधारा के मीडिया संस्थान छोड़ देते हैं, उन्हें खबर लहरिया की महिला रिपोर्ट्स की टीम कवर करती है। इस समय खबर लहरिया की संपादक कविता बुंदेलखंडी हैं। कविता ने 2 साल पहले न्यूजक्लिक वेबसाइट से बात करते हुए कहा था, ''पहले माना जाता था कि महिलाएं पत्रकार नहीं हो सकती हैं। हमने इस धारणा पर चोट की है। हमारी रिपोर्टर्स ऐसे इलाकों से खबरें लाती रही हैं, जहां मेनस्ट्रीम मीडिया नहीं पहुंच पाता था। शुरुआत में हमपर समाज में, प्रशासन में काफी सवाल उठाए गए। हम इन चुनौतियों को झेलकर आगे बढ़े हैं।''

खबर लहरिया की संपादक कविता बुंदेलखंडी कहती हैं,

हौसले को सलाम

''हम अपने रिपोर्टर्स को पत्रकारिता की बेसिक ट्रेनिंग देते हैं। उन्हें बताते हैं कि फील्ड में कैसा व्यवहार रखना है। हम हर तरह की खबरें कवर करते हैं, हम महिलाओं पर रिपोर्टिंग करते हैं, हिंसा पर रिपोर्टिंग करते हैं, सरकारी योजनाओं के लागू करने में खामियों को उजागर करते हैं। पर्यावरण से जुड़ी खबरें भी करते हैं। बुंद. `लखंड के लोगों को होने वाली हर परेशानी को हम कवर करते हैं। ग्रामीण आवाज को बाहर तक पहुंचाना बहुत जरूरी है।

खबर लहरिया 2015 से पूरी तरह डिजिटल हो गई और अब यह चंबल मीडिया का एक अंग है। इसकी अपनी वेबसाइट है, जिसपर आप बुंदेलखंड की जनसरोकार से जुड़ी तमाम खबरें पढ़ सकते हैं। इस संस्थान ने अपने रिपोर्टर्स को स्मार्टफोन दिए हैं जिसके जरिए ये महिला पत्रकार अलग–अलग इलाकों में जाकर रिपोर्ट तैयार करती हैं। हाल ही में इसपर अंग्रेजी खबरों की सेवा भी शुरू की गई है।

खबर लहरिया की टीम को कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाजा चुका है। सबसे पहले साल 2004 में खबर लहरिया को चमेली देवी जैन अवॉर्ड मिला। साल 2009 में इसे यूनेस्को को किंग सेजोंग लिटरेसी प्राइजट से सम्मानित किया गया। इसके अलावा लाडली मीडिया अवॉर्ड, टाइम्स नाउ के अमेजिंग इंडियन, कैफी आजमी अवॉर्ड, ग्लोबल मीडिया फोरम अवॉर्ड आदि से सम्मानित किया जा चुका है।

कहानी शुरू होती है 1990 से, जब हमारे देश में वयस्क महिलाओं को साक्षरता देने के बारे में बात होना आरंभ हो चुका था। सरकार के महिला सामाख्या कार्यक्रम के तहत कई महिलाओं ने शिक्षित और साक्षर बनने के लिए साक्षरता कैंपों में दाखिले के लिए अपना नामांकन कराया था। लेकिन पाठ्यक्रम के पूरा होने के बाद, उनके सामने समस्या होती थी भाषा की। उनकी स्थानीय भाषा में पाठ्य साम्रगी की संख्या बहुत कम होने के कारण आगे उनके लिए कुछ भी पढ़ना या लिखना आसान नहीं था। तब उनके लिए समाधान लेकर आया 'महिला डाकिया', जिसे हम खबर लहरिया का अग्रदूत कह सकते हैं। महिला डाकिया न केवल अपनी पठन सामग्री को लेकर अनोखा था बल्कि जिस तरह से उसे बनाया गया था और फिर प्रस्तुत किया जाता था, वह अपने आप में सबसे अलग था। लेखक और पाठक के बीच की दीवार को खत्म करते हुए, इस नव साक्षर महिलाओं को अपने लिए और अपनी साथियों के लिए लिखने का प्रशिक्षण दिया गया और इस तरह उन्होंने प्रिंटिंग की दुनिया में कदम रखा जो पूरी तरह से पुरुषों का क्षेत्र था। महिला डाकिया का प्रयोग 1995 में समाप्त हो गया। 2002 में शुरू हुई खबर लहरिया को उसके आगे का प्रयोग माना जा सकता है। साल 2002 में शुरू हुआ यह अखबार 2015 तक निकलता रहा और 2016 में डिजिटल हो गया। यू ट्यूब भी एक माध्यम है। अखबार की प्रसार संख्या 4500 और पाठक संख्या करीब 20 हजार रही। मूल्य दो रुपये था। ग्रामीण महिलाओं के इस अखबार में काम करने के लिए कम से कम आठवीं कक्षा पास होना जरूरी था, लेकिन नवसाक्षर भी जुडीं।

अपने काम में जुटीं खबर लहरिया की पत्रकार श्यामकली।

हौसले को सलाम

खबर लहरिया पर बनी 'राइटिंग विद फायर' ऑस्कर के लिए नामित

भारतीय डॉक्युमेंट्री फिल्म 'राइटिंग विद फायर' (Writing with Fire) ने ऑस्कर के अगले चरण में जगह बना ली है। इस वृत्तचित्र को रिंटू थॉमस और सुष्मित घोष ने निर्देशित किया है। यह वृत्तचित्र 'खबर लहरिया' अखबार/वेब पोर्टल पर आधारित है जो दलित–आदिवासी और अल्पसंख्यक महिलाओं के द्वारा चलाया जाने वाला देश का पहला और इकलौता अखबार है। इस अखबार ने पिछले 20 साल में सुदूर ग्रामीण इलाकों की आवाज सरकार से लेकर देश–विदेश तक पहुंचाई है। डॉक्यूमेंट्री को 'असेंशन', 'एटिका', 'फ्लीश' और 'समर ऑफ द सोल' के साथ नामांकित किया गया है। राइटिंग विद फायर एकमात्र भारतीय फिल्म है, जिसे इस साल के ऑस्कर पुरस्कारों में नामांकित किया गया है।

राइटिंग विद फायर फिल्म में मीरा और उनके साथी पत्रकारों की कहानी बताई गई है। जो नई तकनीक सीखते हुए पितृसत्ता पर सवाल उठाती हैं, पुलिस बल की अक्षमता की जांच करती हैं, और जाति व लिंग हिंसा के पीड़ितों के बारे में लिखती हैं। एक वेबसाइट के साथ ऑनलाइन बातचीत के दौरान फेमिनिस्ट आइकॉन ग्लोरिया स्टीनम ने फिल्म को वास्तविक जीवन से प्रेरित होने के लिए सराहा। वैराइटी ने फिल्म को

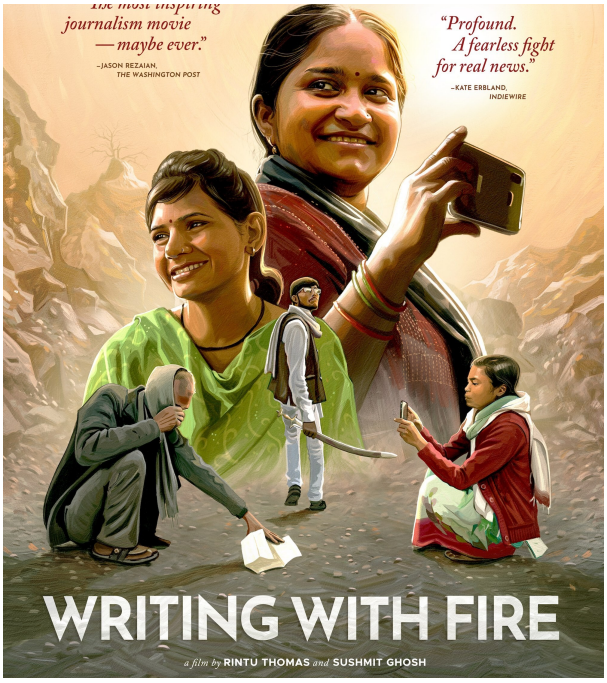

'भारत की पत्रकारिता के गौरव के लिए उत्साहजनक, प्रेरणादायक श्रद्धांजलि' कहा। हॉलीवुड रिपोर्टर ने अपनी समीक्षा में लिखा, 'फिल्म की अंतरंगता और तात्कालिकता की भावना दर्शकों को ऐसा महसूस कराती है कि वह खुद उन पत्रकारों के साथ ग्राउंड रिपोर्टिंग कर रहे हैं।'

जिद का जश्न

लीक से हटकर काम कर रहीं ये वीरांगनाएं

सीमाओं से परे, हर दायरे से बाहर ऐसी कई स्त्रियां हमारे इर्द–गिर्द मौजूद हैं जिन्होंने अपनी छोटी सी कोशिश से कई दूसरी महिलाओं का जीवन बदलकर रख दिया है। शराब के ठेकों के खिलाफ आंदोलन छेड़ने से लेकर खेती में कुछ नया करने तक इन वीरांगनाओं ने हमें 'जिद का जश्न' बनाने का अवसर दे दिया है। तो आइए, जानते हैं कुछ ऐसी ही अनोखी वामाओं के बारे में :

सुनीता देवी : आंदोलन चलाकर दारू के ठेकों को बंद कराया

वो साल 2013 था, जब सासाराम में 30 साल की साक्षी देवी करीब 150 और महिलाओं के साथ हाथ में झाड़ू, बरतन, बेलन और छड़ी लेकर स्थानीय बाजार में शराब की दुकान की ओर चल पड़ी थीं। उनके घर से करीब एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित शराब की यह दुकान उस इलाके के सभी घरों की दुर्दशा का कारण बनी हुई थी। साक्षी देवी ने बताया, ''यहां बैठकर दारू पीना और फिर घर जाकर हंगामा करना। अब इसे और बर्दाश्त नहीं कर सकते थे हम। हमारा धैर्य खो रहा था।''

साक्षी देवी और अन्य महिलाएं प्रगतिशील महिला मंच के बैनर तले अपने आंदोलन को बढ़ा रही थीं, जिसका निर्माण 50 साल की सुनीता देवी ने किया था। सुनीता देवी बताती हैं कि जब सभी महिलाएं शराब के ठेके पर पहुंचीं तो ठेका मालिक ने उनसे याचना की कि त्योहार तक ठेका चलने दें उसे बाद वह उसे हटा देगा। त्योहार आने वाले थे। लेकिन महिलाओं ने ठेका मालिक पर कोई भरोसा नहीं किया और अपने डंडों, बरतनों, बेलनों और झाड़ू की मदद से दुकान को बंद कराकर ही लौटीं। सुनीता देवी ने बताया कि दारू के ठेकों के खिलाफ हमने जो आंदोलन छेड़ा तो घर–घर से औरतों ने हमारा साथ दिया। न केवल सासाराम में बल्कि बिहार के दूसरे क्षेत्रों में भी इस आंदोलन की गूंज सुनाई दी। ठेके बंद कराए जाने लगे।

बिहार में, अप्रैल, 2016 में सरकार ने शराब पर पूर्ण प्रति. बंध लगा दिया। आंकड़ों के मुताबिक, शराबबंदी के बाद से राज्य में घरेलू हिंसा के मामले 37 प्रतिशत तक कम हुए है, जबकि इसी अवधि के दौरान पूरे देश में ऐसे मामलों में 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। साक्षी देवी ने बताया, ''मेरे तीन बच्चे हैं। मेरे पति 300 रुपए महीना कमाकर लाते थे लेकिन उनमें से आधे से ज्यादा वे दारू पीने में उड़ा देते थे। अब जो पैसे बचते थे उनमें से मैं क्या–क्या करती। बच्चों की किताबें कहां से आतीं, दवाइयां कैसे खरीदी जातीं और फिर राशन–पानी! उनका इंतजाम कहां से होता। मुश्किल था कि मुंह खोलते ही पति सारा गुस्सा मुझपर और मेरे बच्चों पर निकालते थे। मुझे तो बहुत मारते थे।'' वो कहती हैं, ''मैं नहीं चाहती थी कि मेरे दोनों बेटे अपने पिता को देखकर उनके जैसे बनें। बड़े होकर वो भी शराब पीकर अपनी पत्नी और बच्चों को मारें।''

20 साल की संध्या कुमारी भी दारू के ठेकों के बंद होने से राहत महसूस कर रही है। कहती हैं, ''जब भी पिताजी रात को घर लौटते, मैं सिहर उठती थी। वो लगभग रोज ही दारू पीकर आते थे। और फिर मेरी मां को मारते–पीटते थे। लेकिन अब घर में सब कहते हैं कि दारू पीना महंगा हो गया है। अब पिताजी हमारे साथ बैठकर खाना खाते हैं। कभी–कभी हमारी पढ़ाई के बारे में भी पूछते हैं।'' ये ठीक है कि बिहार में शराबबंदी लागू है, लेकिन इसके कारण अवैध शराब का जो धंधा बढ़ रहा है उसने नई मुसीबत खड़ी कर दी है। कई महिलाएं कहती हैं कि शराब अब घर–घर पहुंच रही है। मर्द लोग पहले से ज्यादा पैसा देकर दारू खरीद रहे हैं।

साभार : www.indiaspend.com

जिद का जश्न

सशक्त महिलाएं : 24 महिला किसान बनीं कृषि सेवा प्रदाता

पारंपरिक रूप से, कृषि सेवा प्रदान करना एक पुरुष प्रधान कार्य माना जाता था। इसलिए, तेजी से विकसित होते कृषि यंत्रों का फल भी पुरुष किसानों को ही मिलने की अपेक्षा की जाती थी। बिहार में महिला किसानों के एक दल ने इस पारंपरिक अवधारणा को चुनौती दी और देश की पहली महिला कृषि सेवा प्रदाता समूह बन गईं।

ज्योति महिला सामाख्या फेडरेशन और शारदा समूह फेडरेशन के साथ मिलकर बिहार स्थित आईआरआरआई (IRRI) जेंडर विशेषज्ञ सुगंधा मुंशी ने इस क्रांतिकारी बदलाव की अगुआ के तौर पर काम किया। एक स्वयं सहायता समूह की सदस्यों की बचत की कमाई को सरकार द्वारा प्रदत्त सब्सिडी के साथ मिलाकर मुजफ्फरपुर जिले के बांद्रा गांव की 24 महिला किसान आज एक यांत्रिक चावल ट्रांसप्लांटर (mechanical rice transplanter) की गौरवान्वित मालिक है। अब वे अपने गांव और आस–पास के गांवों में भी चावल किसानों को इस मशीन की सेवाएं दे पाएंगी और इस तरह अपनी जिंदगी को और बेहतर बना सकेंगी।

इस कामयाब पहल को सेरेल सिस्टम इनीशिएटिव फॉर साउथ एशिया (CSISA) के द्वारा एक पायलट प्रोजेक्ट के तहत चलाया गया। बिहार देश के सबसे कम विकसित राज्यों में से एक है, जहां कृषि उत्पाद बहुत कम और गरीबी अत्यधिक ज्यादा है। यही वजह है कि यहां के पुरुष रोजगार की तलाश में दूसरे राज्यों में सबसे अधिक संख्या में प्रवास करते हैं और उनके जाने के बाद खेती और पशुओं की जिम्मेदारी, घर का काम और बच्चों तथा बुजुर्गों की देखभाल का काम महिलाओं के कंधों पर आ जाता है।

आम तौर पर, हमारे देश में ग्रामीण महिलाएं सांस्कृतिक भेदभाव, अकेलापन और अशक्तता की शिकार होती हैं। वे अशिक्षित हैं और उत्पादन तथा आय के संसाधनों तक उनकी पहुंच और नियंत्रण न के बराबर होती है। इस संदर्भ में, राज्य में महिलाओं को गरीबी के दलदल से निकालने के लिए जरूरी है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को सशक्त बनाया जाए और कृषि का यंत्रीकरण किया जाए और इस दिशा में सीएसआईएसए परियोजना की टीम लगातार काम कर रही है। इस परियोजना द्वारा प्रचारित की जा रही यांत्रिक चावल ट्रांसप्लांटर एक ऐसी तकनीक है जो गरीबी को दूर करने के लिए दोनों ही सोच को लेकर आगे बढ़ रही है। पैदावार को बढ़ाने के साथ–साथ यह मशीन महिलाओं को और अधिक कमाने में उनकी मदद कर सकती है। इसके अलावा, यह मशीन महिलाओं को कठिन परिश्रम और 9 से 10 घंटे तक जोखिम भरे काम करने से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याओं को भी बहुत हद तक कम कर देती है।

यद्यपि महिला किसानों को प्रेरित करना एक चुनौतीपूर्ण काम था, फिर भी समय के साथ उन्होंने यांत्रिक कृषि के फायदों को स्वीकार कर लिया। इस प्रक्रिया को पूरा करने में सूचनाओं की कमी बड़ी बाधा थी। लेकिन सीएसआईएसए परियोजना टीम द्वारा रसद, प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता प्रदान करने में मिल रहे लगातार सहयोग ने इस कमी को पूरा करने में बड़ा योगदान दिया। इस पायलट प्रोजेक्ट का हिस्सा बनने के बाद महिलाओं ने अपने सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बड़ा बदलाव महसूस किया। उन्हें न केवल परिवार के मर्द सम्मान देने लगे हैं बल्कि अब उन्हें कृषि समुदाय का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा समझा जाने लगा है।

साभार : www.irri.org

जिद का जश्न

रूमा देवी : 22 हजार महिलाओं को दिया रोजगार

8वीं में स्कूल छोड़ने वाली महिला आज राजस्थानी हस्तशिल्प की जानी–मानी फैशन डिजाइनर

रूमा देवी राजस्थान के बाड़मेर जिले की रहने वाली हैं। बेइंतहा गरीबी में पली–बढ़ी। बाल विवाह का दंश झेला। पाई–पाई को मोहताज हुई, मगर आज 22 हजार महिलाओं को नौकरी दे रखी है। झोपड़ी से शुरू हुआ उनका सफर यूरोप और दुनिया भर तक फैल चुका है।

राजस्थानी हस्तशिल्प जैसे साड़ी, बेडशीट, कुर्ता समेत अन्य कपड़े तैयार करने में इनको महारत हासिल है। इनके बनाए गए कपड़ों के ब्रांड विदेशों में भी फेमस हैं। ये भारत–पाकिस्तान सीमा पर स्थित बाड़मेर, जैलसमेर और बीकानेर जिले के करीब 75 गांवों की 22 हजार महिलाओं को रोजगार मुहैया करवा रही हैं। इनके समूह द्वारा तैयार किए गए उत्पादों का लंदन, जर्मनी, सिंगापुर और कोलंबो के फैशन वीक्स में भी प्रदर्शन हो चुका है।

आज रूमा देवी भले ही हजारों महिलाओं का जीवन संवार रही हों, मगर इनके खुद के जीवन की शुरुआत संघर्ष से हुई। बाड़मेर जिले के गांव रातवसर में खेताराम व इमरती देवी के घर नवम्बर 1988 में रूमा देवी का जन्म हुआ। पांच साल की उम्र में रूमा ने अपनी मां को खो दिया। फिर पिता ने दूसरी शादी कर ली। 7 बहन व एक भाई में रूमा देवी सबसे बड़ी हैं। रूमा देवी अपने चाचा के पास रहकर पली–बढ़ी। गांव के सरकारी स्कूल से महज आठवीं कक्षा तक पढ़ पाई। महज 17 साल की उम्र में रूमा देवी की शादी बाड़मेर जिले के ही गांव मंगल बेरी निवासी टिकूराम के साथ हुई। इनके एक बेटा है लक्षित, जो अभी स्कूल की पढ़ाई कर रहा है। टिकूराम नशा मुक्ति संस्थान जोधपुर के साथ मिलकर काम करते हैं। राजस्थान में पेयजल की सबसे अधिक किल्लत बाड़मेर में है। यहां भूजल स्तर पाताल की राह पकड़ चुका है। ऐसे में रूमा ने वो दिन भी देखें जब इन्हें बैलगाड़ी पर बैठकर घर से 10 किलोमीटर दूर से पानी लाना पड़ता था।

बाड़मेर में 1998 में ग्रामीण विकास एवं चेतना संस्थान

बाड़मेर (जीवीसीएस) नाम से एनजीओ बना, जिसका मकसद था राजस्थान के हस्तशिल्प उत्पादों के जरिए महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना। वर्ष 2008 में रूमा देवी भी इससे संस्थान से जुड़ी और जमकर मेहनत की। हस्तशिल्प उत्पादों के नए–नए डिजाइन तैयार किए। बाजार में मांग बढ़ाई। वर्ष 2010 में इन्हें इस एनजीओ की कमान सौंप दी गई। अध्यक्ष बना दिया गया। एनजीओ का मुख्य कार्यालय बाड़मेर में ही है। ग्रामीण विकास एवं चेतना संस्थान के सचिव विक्रम सिंह बताते हैं कि हमारे एनजीओ से आस–पास के तीन जिलों की करीब 22 हजार महिलाएं जुड़ी हुई हैं। ये महिलाएं अपने घरों में रहकर हस्तशिल्प उत्पाद तैयार करती हैं। बाजार की डिमांड के हिसाब से इन्हें ट्रेनिंग और तैयार उत्पाद को बेचने में मदद एनजीओ द्वारा की जाती है। सभी महिलाओं के कामकाज का सालाना टर्न ओवर करोड़ों में है।

रूमा देवी संघर्ष, मेहनत और कामयाबी का दूसरा नाम है। इन्हें भारत में महिलाओं के लिए सर्वोच्च नागरिक सम्मान नारी शक्ति पुरस्कार 2018 से सम्मानित किया जा चुका है। 15 व 16 फरवरी 2020 को अमेरिका में आयोजित दो दिवसीय हावर्ड इंडिया कांफ्रेस में रूमा देवी को भी बुलाया गया था। तब इन्हें वहां अपने हस्तशिल्प उत्पाद प्रदर्शित करने के साथ–साथ हावर्ड यूनिवर्सिटी के बच्चों को पढ़ाने का मौका भी मिला। इसके अलावा रूमा देवी कौन बनेगा करोड़पति में अमिताभ बच्चन के सामने हॉट सीट पर भी नजर आ चुकी हैं।

समृद्धि : सौर ऊर्जा से किस्मत बदल रहीं महिला किसान

बिहार और झारखंड की महिलाओं ने सौर ऊर्जा के इस्तेमाल से हरियाली के साथ समृद्धि के द्वार खोल दिए हैं। झारखंड के लाते. हार जिले के महुआडाड़ इलाके में सोलर पंप किसानों के लिए वरदान साबित हो रहा है। खासकर महिला किसानों के लिए। इन इलाकों में किसानों के पास सिंचाई के लिए बिजली का नहीं होना एक बड़ी समस्या है।

जेएसएलपीएस द्वारा संचालित जोहार परियोजना के जरिए झारखंड में कृषि को बढ़ावा देने के लिए कार्य किया जा रहा है। इसके तहत किसान खास कर महिला किसानों का क्षमता निर्धारण किया जा रहा है। साथ ही उन्हें विभिन्न प्रकार की योजनाओं का लाभ दिया जा रहा है। इनमें सोलर पंप योजना भी शामिल है। इसके तहत महिलाओं के समूह को एक मोबाइल सोलर पंप दिया जाता है, जिसमें सोलर पैनल और दो पहिया रिक्शे में फिक्स किया रहता है। साथ ही इसके साथ एक मोटर पंप भी रहता है जिससे कुएं या नदीं के पानी से सिंचाई की जा सकती है। जोहार द्वारा दिए दिए गए इस सोलर पंप से महिला किसानों को सबसे ज्यादा फायदा हुआ। महिला किसानों का कहना है कि पहले उन्हें सिंचाई के लिए बिजली का इंतजार करना पड़ता था। जिस समय बिजली रहती थी, ना चाहते हुए भी धूप, गर्मी और ठंड में उसी समय सिंचाई करना पड़ता था। हमेशा रात में सिंचाई करना पड़ता था। ठंड के मौसम में रात में खेत में सिंचाई करना बेहद की कष्टदायी काम होता था। इसके अलावा गर्मियों के दिनों में दोपहर में बिजली रहने पर सिंचाई करना काफी मुश्किल होता था। चान्हों प्रखंड के गणेशपुर गांव की रहने वाली महिला किसान बताती हैं कि सोलर पंप मिलने से उन्हें काफी लाभ हुआ है। अब अपने सुविधानुसार वो सिंचाई कर सकती है।

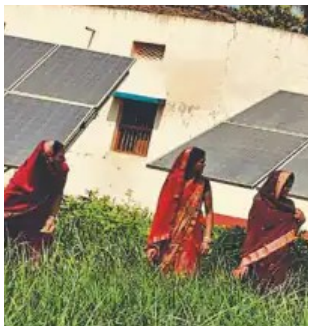

इसी तरह, बिहार में मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर और पटना की 300 से अधिक महिलाएं सौर ऊर्जा के इस्तेमाल से एक हजार से अधिक एकड़ भूमि को सिंचित कर हरियाली के साथ समृद्धि के द्वार खोल रही हैं। इन महिलाओं ने समूह में पैसा जमा कर सोलर पंपसेट खरीदा है। जिन खेतों में कभी सिर्फ हल्दी और आलू का उत्पादन होता था, वहां पिछले पांच सालों से हरी सब्जियां उग रही हैं। इनके पति काम की तलाश में दूसरे प्रदेश चले जाते थे। ऐसे में इन लोगों की खेत छह महीने तक परती रह जाती थी क्योंकि सिंचाई का कोई साधन नहीं था। लेकिन अब सोलर पंपसेट से बिना बिजली के सिंचाई कर पूरे गांव के खेत को सिंचित करने का काम कर रही हैं। यही कारण है कि लॉकडाउन में भी इन्होंने दूसरों की मदद की। सरिता देवी, पूनम देवी, सुनैना, रंगीला देवी और रेखा देवी जैसी हिलाएं दूसरे के खेतों से पटवन कर महीने में 20 हजार से अधिक कमा लेती हैं।

जिद का जश्न

अनीता गुप्ता : संघर्षों में बढ़ीं, हजारों स्त्रियों को दिखाई राह

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर इस बार राष्ट्रपति भवन में आयोजित एक समारोह में भोजपुर की उद्यमी अनीता गुप्ता को प्रतिष्ठित नारी शक्ति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अनीता ने अब तक बिहार में 1 लाख से अधिक महिलाओं को विभिन्न हस्तशिल्प और क्रोकेट ज्वैलरी पर कौशल प्रशिक्षण दिया है और 2001 में आरा में स्थापित अपने भोजपुर महिला कला केंद्र के माध्यम से 10,000 ग्रामीण महिलाओं को रोजगार प्रदान किया है।

पुरस्कार प्राप्त करने के बाद, अनीता ने कहा कि उन्हें ये महसूस कर बहुत अच्छा लग रहा है कि महिला सशक्तिकरण और प्रतिभा के लिए उनकी कड़ी मेहनत को पहचाना गया है। अनीता ने ग्रामीण महिलाओं के लिए स्वास्थ्य जांच शिविर आयोजित करने और उन्हें शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए 500 से अधिक स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) की स्थापना की है। उन्होंने पानी के उपयोग और स्वच्छता के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए विभिन्न अभियानों का भी आयोजन किया है। अनीता जब बहुत छोटी थीं, तभी उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। अनीता अपने सात भाई–बहनों में पांचवें नंबर पर थीं। उनकी मां सभी बच्चों को लेकर उनके चाचा के घर चली गईं। अनीता बताती हैं कि चाचा के तीनों बेटों की मौत हो चुकी थी। और बच्चों की चाहत में वे एक कम उम्र की लड़की को खरीद कर ले आए थे और उससे वो घर के सारे काम करवाते थे। उसी समय अनीता को अहसास हुआ कि अगर वह लड़की पढ़ी–लिखी होती तो उसे इस तरह का काम नहीं करना पड़ता। उन्होंने कहा, ''मैंने 14 साल की उम्र में काम करना शुरू कर दिया था। अपनी पढ़ाई की इच्छा को पूरा करने के लिए मैंने 1993 में अपने पड़ोस की लड़कियों को स्किल ट्यूशन क्लास देना शुरू किया। मैंने प्रत्येक छात्र से 25 रुपये चार्ज करके कक्षाएं देना शुरू कर दिया। मैंने ग्रेजुएशन तो किया, लेकिन काम की व्यस्तता के कारण एमए पूरा नहीं कर पाई।'' धीरे–धीरे उन्होंने आस–पड़ोस में रहने वाली महिलाओं को भी सिलाई–कढ़ाई सिखाना शुरू कर दिया। संदेश फैला दिया कि हर कोई अपनी बेटी को उनके पास सीखने के लिए भेज सकता है। हालांकि शुरू में लोगों ने यह कहकर मना किया कि यदि बड़े घर की बेटियां कमाएंगी तो क्या होगा, लेकिन फिर भी धीरे–धीरे लोगों ने अपनी बेटियों को भेजना शुरू कर दिया। अनीता ने 1993 में दो लड़कियों के साथ भोजपुर महिला कला केंद्र की शुरुआत कर दी।

अनीता की मेहनत को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भी सराहा है। अनीता ने बताया कि उन्होंने प्रधानमंत्री से हर जिले में कारीगरों के लिए एक मंच या स्थाई स्थान प्रदान करने का अनुरोध किया, ताकि उन्हें अपने उत्पादों को प्रदर्शित करने के लिए मेलों का इंतजार न करना पड़े। अनीता के मुताबिक प्रधानमंत्री ने मुझे आश्वासन दिया कि हर जिले में रेलवे स्टेशनों पर कारीगरों को एक स्थायी स्थान दिया जाएगा।

जिद का जश्न

संथाल आदिवासी स्त्रियां: घोली जिंदगी में मिठास

फूलों की छपाई वाली चमकीली गुलाबी रंग की साड़ी पहने, अपनी स्कूटी पर हेलमेट लगाए सीमा हसदा, एक खाली मैदान में रुक गईं, जिसके बगल में तिल की फसल में फूल आए थे। वो एक लाइन में लगे लकड़ी के बक्सों की ओर बढ़ गईं। बांका के तरुनिया और उसके आस–पास के गांवों की कुछ संथाल आदिवासी महिलाएं पहले से ही इन बक्सों में मधुमक्खियां पाल रही थीं। उनके चेहरे अच्छी तरह से जाली लगी टोपियों से सुरक्षित थे, इन महिलाओं ने शहद उत्पादन की जांच करने के लिए सावधानी से बक्से से फ्रेम निकाले।

''जल्द ही शहद का तिल फ्लेवर बिक्री के लिए तैयार हो जाएगा। मेरे पास पहले से ही एक क्विंटल शहद है'', व्यवसायी महिला और तीन बच्चों की मां सीमा ने मुस्कुराते हुए कहा, ''पिछले साल, महामारी (महामारी) के दौरान, हमने लगभग नौ क्विंटल मधु (शहद) मुंबई भेजा था।'' भारत की वित्तीय राजधानी, मुंबई, दक्षिण बिहार के बांका जिले के तरुनिया गाँव से लगभग 2,000 किलोमीटर दूर है, जहां आदिवासी महिलाएं एक किसान उत्पादक संगठन– बांका मधु किसान उत्पादक संगठन का हिस्सा हैं – और दूर तक शहद का उत्पादन और बिक्री कर रही हैं। एफपीओ को 2020 में पंजीकृत किया गया था। इसके कुल 350 सदस्यों में से 200 सीमा जैसी ग्रामीण महिलाएं हैं। इस एफपीओ के 60 प्रतिशत से अधिक सदस्य आदिवासी हैं। बांका जिले में 50 टन के कुल वार्षिक शहद उत्पादन में से 40 टन अकेले इसी एफपीओ द्वारा उत्पादित किया जाता है।

तरुनिया गांव की एक युवा संथाल मारिया टूटू, जो बांका एफपीओ की सह–निदेशक हैं, अन्य ग्रामीण महिलाओं को मधुमक्खी पालन के लिए प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। 2019 में, मारिया ने 15 बक्सों के साथ मधुमक्खी पालन किया। उन्हें स्थानीय कृषि विज्ञान केंद्र से तकनीकी मार्गदर्शन और सरकार से वित्तीय सहायता मिली। आज उनके पास 65 डिब्बे हैं। एफपीओ की सह–निदेशक मारिया ने बताया कि मधुमक्खियों सहित इन बक्सों को 90 प्रतिशत की सब्सिडी पर प्रदान किया गया था। मुझे लागत का केवल दस प्रतिशत योगदान देना था और मैंने शहद के कारोबार में हाथ आजमाने का फैसला किया। मैंने महसूस किया कि हम महिलाएं लगभग सब कुछ कर सकती हैं, चाहे वह खेती हो, बच्चे पैदा करना, वृद्धों की देखभाल करना और घर चलाना। फिर हम अपना खुद का व्यवसाय क्यों नहीं चला सकतीं।

उन्होंने अपने विस्तारित परिवार की चार अन्य महिलाओं को प्रोत्साहित किया और इन पांचों संथाल महिलाओं ने मिलकर 2019 में मधुमक्खी पालन का व्यवसाय शुरू किया। उन्होंने कहा, ''मैंने इन चार महिलाओं से कहा कि अगर कोई नुकसान हुआ तो

मैं इसे वहन करूंगी। लेकिन हमें इसे आजमाना चाहिए। और उसी में हमने बाजी मार ली।'' अब, मारिया के आदिवासी गांव के सभी 15 घरों की महिलाएं मधुमक्खी पालन में हैं और विभिन्न प्रकार के फ्लेवर में शहद बेचकर नियमित आय अर्जित करती हैं – शीशम, सरसों, लीची, पलाश, महुआ और बहुत कुछ। तरुनिया में ही नहीं, बल्कि बिहार–झारखंड सीमा के पास स्थित बांका जिले के कई अन्य गांवों की महिलाएं मधुमक्खी पालन में हैं और उनका व्यवसाय तेजी से बढ़ रहा है। सीमा ने बताया कि अभी तिल की फसल तैयार हो रही है, इसलिए तिल शहद है। दिसंबर तक, सरसों के शहद का समय आ जाएगा क्योंकि खेत सरसों की फसल के पीले फूलों से ढंक जाएंगे। जनवरी से मार्च तक शहद के लिए सबसे अच्छा समय होता है क्योंकि वसंत ऋतु के दौरान, कई फूल होते हैं, और शहद के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

आलेख व फोटो साभारः गांव कनेक्शन

कालाहांडी का उजला पक्ष

भीषण गर्मी और पितृसत्ता, दोनों पर वार

– करीब 40 साल की गंगा सुता उड़ीसा के कालाहांडी में भवानीपटना और धर्मगढ़ को जोड़ने वाली सड़क पर तरबूज बेचती हैं। वो हर रोज अपने साथ करीब एक दर्जन तरबूज लाती हैं और सड़क किनारे खुद के बनाए हुए टेंट के नीचे देर शाम तक बेचती हैं, ताकि इस भयानक गर्मी में उधर से गुजरने वाले यात्रियों को थोड़ी तराहट मिल सके। जब उनकी तस्वीर ली जा रही थी, तो उन्हें लगा कि इसमें ऐसा क्या है, जबकि वह 43 डिग्री तापमान में उस सड़क के किनारे बैठी थीं जहां दोनों ओर दूर–दूर तक उनके अलावा कोई दूसरी महिला नहीं थी।

– 12 साल की संपूर्णा साहू ताड़ का फल बेचती है। गर्मी के मौसम में उगाया जाने वाला ऐसा फल जो कालाहांडी में प्रचुर मात्रा में होता है। वह बहुत खूबसूरती से उसे उकेर रही थी, उसके भीतरी गूदेदार हिस्से को निकालकर ग्राहकों को साल के पत्ते पर परोस रही थी। उसके साथ उसके चाचा भी थे, जो अपनी दोपहर की नींद के बीच–बीच में ग्राहकों से पैसे वसूल लिया करते थे। एक साथ कई कामों को करने में माहिर संपूर्णा ने बातचीत में बताया कि सड़क किनारे की इस दुकान को चलाने के अलावा वह स्कूल भी जाती है और फिर घर में अपने 7 लोगों के परिवार के लिए खाना भी बनाती है।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की ''वर्ल्ड इम्प्लॉयमेंट एंड सोशल आउटलुक 2018'' नाम की एक रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में काम करने के कुल घंटों में से 4.2 प्रतिशत यानी 15.1 मिलियन घंटों के फुल टाइम जॉब अत्यधिक गर्मी के कारण छोड़ दिए जाते हैं। ऐसे में अंदाजा लगाया जा सकता है कि कालाहांडी की ये महिलाएं इस गर्मी में सड़क किनारे अपनी दुकान चलाने के लिए हिम्मत कहां से ला पाती हैं। इसमें शक नहीं कि, गंगा सुता और संपूर्णा साहू उस परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती हैं जो आज कालाहांडी में धीरे–धीरे अपना स्वरूप ले रहा है। हमने अब तक यहां के बारे में जो सुना–देखा वह बच्चों की मौत, गिरती हुई व्यवस्था और कुपोषण के इर्द–गिर्द ही घूमती रही, लेकिन अब हमें उस बदलाव को भी देखना चाहिए जो यहां की महिलाएं काम करने और सीखने के माहौल में ला रही हैं। उनका संघर्ष शानदार है और निरंतर जारी है।

अपने तीन साल के बेटे के साथ मंजुला चिलचिलाती धूप में खड़ी है, ताकि वह वहां से गुजरने वाले प्यासे यात्रियों को पीने के लिए पानी दे सके। कालाहांडी के मार्केट एरिया और मेन ब्लॉक में बोतलबंद पानी खरीद लेना आसान है, लेकिन गांवों के बीच में और लंबी सड़क के किनारे यात्रा करते हुए इसे पा लेना लगभग असंभव है। ऐसे में इन जगहों पर हर पांच से सात किलोमीटर की दूरी पर स्थानीय औरतें पीने के पानी के साथ मौजूद होती हैं। उन्हें पानी के बूथ कहा जा सकता है जहां मिट्टी के घड़े से लोग पीने का पानी ले सकते हैं। मंजुला जैसी स्त्रियों का समर्पण दिखाता है कि कैसे अच्छे काम और सेवा करने के भाव से रोजगार पैदा किया जा सकता है।

प्रमिला टुडु एक मजदूर हैं जो जयपटना में सड़क किनारे चल रहे निर्माण कार्य में लगी हैं। अपने जैसी अन्य महिलाओं के साथ भरी दुपहरी में भी यहां काम कर रहीं प्रमिला को देखकर कौन कह सकता है कि निर्माण उद्योग में सिर्फ मर्द ही काम कर सकते हैं। इस उद्योग में भी, पिछड़ापन महिलाओं के स्त्रैण धैर्य को माप नहीं पाया और आज कालाहांडी के हर निर्माण स्थल पर महिलाओं को काम करते हुए देखा जा सकता है। अपने दुपट्टों से मुंह ढंके हुए ये महिलाएं सीधे सूरज से आंखें मिलाती हैं लेकिन एक पल के लिए भी अपने कदम को पीछे नहीं हटाती हैं।

साभारः www.firstpost.com/india

बिहार सरकार

महिला एवं बाल विकास निगम, बिहार
समाज कल्याण विभाग

समान अधिकार

समान जिम्मेवारी

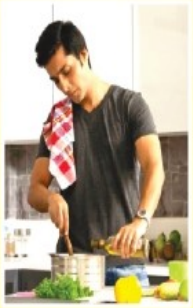

समान उपलब्धि

आइये ऐसे समाज का निर्माण करें जो लड़का और लड़की में भेद–भाव न करें और दोनों को समान अवसर और सुविधा दें।

महिला एवं बाल विकास निगम, बिहार द्वारा जनहित में जारी

मंजरी

स्त्री के मन की

www.emanjari.com

ECO NEEDS FOUNDATION
MAY ALL BE HAPPY

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

We Care
INTERNATIONAL SCHOOL

bansal TUTORIALS

takshila
connect to the universe

COMFED
PRIDE OF BIHAR
Sudha

Canara Bank

SAGE 50

SULABH

GYAN GANGA
ज्ञानम् भारः क्रियां विना

पावरग्रिड

पथ पुल निर्माण निगम

पटना नगरपालिका
1952
CITY OF PATNA

महिला एवं बाल विकास निगम, बिहार
समाज कल्याण विभाग

Limagrain

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है। प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का अन्यत्र इस्तेमाल करना कॉपीराइट का उल्लंघन माना जाएगा।

© इक्विटी फाउंडेशन